वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या ४३८४

काल नं० २८७ (गांधी) मशाल

खण्ड

गांधी विचार दोहन

—गांधीजीकी सम्मति सहित—

लेखक

श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला

अनुवादक

श्री 'आनदवर्धन'

१९५१

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,

सस्ता साहित्य मंडल,

नई दिल्ली।

पांचवीं बार १९५१

मूल्य

डेढ़ रुपया

मुद्रक

नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,

दिल्ली।

जिसकी प्रेम और चितायुक्त शुश्रूषा बिना
यह पुस्तक लिखना और पूरी करना कठिन
हो जाता, उस प्रिय सहधर्मचारिणी
—सौभाग्यवती गोमती को—

सम्मति

इस 'विचार-दोहन' को मैंने पढ़ लिया है। भाई किशोरलाल को मेरे विचारो का परिचय असाधारण है। जैसा परिचय है वैसी ही उनकी ग्रहणशक्ति भी है। इसलिए मुझे इसमें थोडी जगह ही फेर-फार करना पडा है। हम दोनो में बहुतेरे विषयो में विचारो का ऐक्य होने से, हालाकि इसमें भाषा भाई किशोरलाल की है, फिर भी प्रत्येक प्रकरण के लिए अपनी सम्मति देने मे मुझे कठिनाई नहीं हुई। बहुत-से विषयो का समावेश थोडे मे भाई किशोरलाल कर सके है, यह इस दोहन की विशेषता है।

बोरसद
२५-५-३५

—मा० क० गांधी

निवेदन

इस छोटी सी पुस्तक की उत्पत्ति का कारण है विलेपार्ले का गाधी-विद्यालय। इस विद्यालय में, देहात में जाकर लोक-सेवा करने की इच्छा रखनेवाले नवयुवको की शिक्षा के लिए एक वर्ग रक्खा गया था, जिसमे ज्यादातर महाराष्ट्रीय विद्यार्थी थे। गांधीजी के विचार और लेख गुजरात को जितने परिचित है उतने महाराष्ट्र को नही है। इसलिए इस विद्यालय के पाठ्यक्रम मे 'गाधीजी के सिद्धात और विचारो का परिचय' भी एक विषय था। यह विषय मुझे सौंपा गया था, और उसके सिल-सिले में जो तैयारी करनी पडी थी उसीमे से इस पुस्तक का जन्म हुआ।

उसके बाद इस पुस्तक की योजना के विषय मे काकासाहब से चर्चा की और यह उनको पसन्द आई। इस चर्चा में यह भी तय हुआ कि जैसे ही इसके अध्याय एक-एक करके लिखे जाय वैसे ही वे क्रमश गाधीजी के पास भेज दिये जाय तथा वह उनको जाचकर और सुधारकर प्रमाणपत्र दे, ताकि गाधीजी की समूची विचार-प्रणाली उपस्थित करनेवाली एक पुस्तक तैयार हो जाय।

गाधीजी ने यह स्वीकार भी किया, परन्तु देश में और विलायत में काम के बोझ के कारण यह पूरी पुस्तक देखने के लिए समय नही मिल पाया। इसके उप-रान्त ता० ४ जनवरी, १९३२ को वह पकडे गए। अत पहला सस्करण उनके सशो-धनो के बगैर ही छपवाना पडा था। परन्तु अब तो इस सारी पुस्तक को गाधीजी ने ध्यान से पढ़कर उसमें सशोधन किया है, यह प्रकट करते हुए सतोष और आनन्द होता है। उनके किये हुए सारे सुधार पुस्तक मे समाविष्ट कर लिये गए है। परन्तु उसके उपरान्त स्वय मैंने तथा मेरे साथियो ने पुस्तक को फिर से गौर से पढ़ा है। भाषा और रचना मे कतिपय सुधार करके कुछ नये अध्याय लिखे हैं, अथवा कुछेक पुराने फिर नये सिरे से लिखे है, और उनके जोडे जाने के बाद भी गांधीजी ने इसे दुबारा जांचा है। इस पुस्तक में गांधीजी के लेखों के अवतरण थोडे ही हैं। यह उनकी

भाषा या शब्दो का दोहन नही कहा जा सकता। कही-कहीं पाठक के चित्त में यह भी खयाल आ सकता है कि "ऐसा तो गाधीजी के लेखो में कही देखने में नही आया।" अर्थात् यथार्थ मे, जिस प्रकार मैंने गाधीजी के हृदय एव विचारो को समझा है उन्हें मैंने अपने ढग से और अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है। अत यद्यपि गाधीजी ने इसे पढ़ लिया है तथापि इसकी प्रमाणभूतता उनके खुद के लेखो जैसी नही मानी जा सकती।

गाधीजी द्वारा प्रेरित इस युग मे अनेकानेक छोटी-बडी सस्थाए अस्तित्व में आई है, और उनमें अनेक कार्यकर्त्ता नाना प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियो में लगे है। फिर, आत्मशुद्धि तथा स्वराज्य-प्राप्ति के लिए लालायित जनता का भी बहुत बडा समुदाय गाधीजी के विचारो को झेलने का प्रयत्न कर रहा है। उन सबके लिए उपयोगी या पथ-प्रदर्शक होने के योग्य सोलह आने प्रमाणभूत न होते हुए भी ऐसा कहने में हर्ज नही है कि यह पुस्तक आज की समस्याओ तथा सिद्धान्तो के विषय में गाधीजी की विचार-प्रणाली यथार्थ-रूप में प्रस्तुत करने वाली है।

श्री गोकुलभाई भट्ट अगर गाधी विद्यालय खोलने का हठ न करते और अगर काकासाहब ने उस हठ का अनुमोदन न किया होता तो सभव है कि इस पुस्तक की कल्पना ही नही आती। अत उन दोनो का और स्वामी आनन्द का—कि जिन्होंने इस पुस्तक के प्रथम सस्करण के समय मुझे अमित प्रोत्साहन दिया था उनका—मै आभार मानता हू।

जो गाधीजी के लेखो में स्पष्ट-रूप से नही पाया जाता, ऐसा बहुत कुछ इस पुस्तक मे है, ऐसा कुछ लोगो को प्रतीत होता है। कही-कही कुछ लोगो को यह भी शका आयगी कि क्या यह गाधीजी की किसी अन्तरग मडली की चर्चा मे से लिया गया है? मैं यह बतला देना चाहता हू कि ऐसा कुछ भी नही है। मैं यह मानता हू कि किसी भी सत्पुरुष के विचार केवल उसकी पुस्तको के अध्ययन से पूर्ण रूप से नहीं जाने जा सकते, उसका सत्सग आवश्यक है। परन्तु सत्सग के बाद भी उसका हृदय समझने का तथा उसकी समूची विचार-प्रणाली की तह में पैठने का प्रयास करना चाहिए। यह मूलतत्व हाथ लगे तो उसकी सारी विचार-सृष्टि, जिस प्रकार भूमिति

में एक सिद्धांत में से दूसरा निकलता है, ठीक उसी तरह देख पडेगी । गांधीजी को समझने का मेरा प्रयत्न इस प्रकार का है। वह कहां तक सफल हुआ है यह तो गांधीजी तथा मेरी तरह उनके निकट सहवास में रहनेवाले मेरे दूसरे भाई-बहन ही कह सकेंगे ।

यह पुस्तक लिखने के प्रयत्न के कारण मै स्वय ही गाधीजी के विशेष स्पष्टरूप से दर्शन कर सका हू , अर्थात् मुझे यह प्रयत्न बहुत लाभकारी हुआ है, अत आशा है कि पाठको को भी यह पुस्तक लाभकारी अवश्य होगी ।

अन्त में, जिनके विचारो का दोहन करने का यह प्रयत्न किया है, और जिनके प्रेम और समागम से सदा के लिए अनुगृहीत हो गया हू, उन पूज्य बापू के श्रीचरणो को विनयपूर्वक प्रणाम करता हू ।

—किशोरलाल घ० मशरूवाला

विषय-सूची

खण्ड १ : धर्म

खण्ड २ धर्म-मार्ग

खण्ड ३ : समाज

खण्ड ४ सत्याग्रह

खण्ड ५ . स्वराज्य

खण्ड ६ वाणिज्य

खण्ड ७ उद्योग

खण्ड ८ . गोपालन

खण्ड ९ खादी

खण्ड १० स्वच्छता और आरोग्य

खण्ड ११ शिक्षा

खण्ड १२ साहित्य और कला

खण्ड १३ : लोक-सेवक

खण्ड १४ सस्थाए

गांधी-विचार-दोहन

खंड १ : : धर्म

१

परमेश्वर

१ परमेश्वरका साक्षात्कार करना ही जीवनका एक मात्र उचित ध्येय है। जीवनके दूसरे सब कार्य यह ध्येय सिद्ध करनेके लिए होने चाहिए।

२ जो प्रवृत्तिया इस ध्येयकी विरोधी मालूम हो, स्थूल दृष्टिसे उनका फल कितना ही ललचाने वाला और लाभदायक जान पडे तो भी उन प्रवृत्तियोंको त्याज्य समझना चाहिए।

३ जो प्रवृत्ति इस ध्येयकी साधनाभूत जान पडे वह कितनी ही कठिन, जोखिमभरी और स्थूल दृष्टिसे हानिकर प्रतीत हो तो भी अवश्य कर्तव्य है।

४ परमेश्वरका स्वरूप मन और वाणीसे परे है। उसके विषयमें हम इतना ही कह सकते है कि परमेश्वर अनत, अनादि, सदा एकरूप रहनेवाला, विश्वका आत्मारूप अथवा आधाररूप और विश्वका कारण है। वह चैतन्य अथवा ज्ञानस्वरूप है। एक मात्र उसीका सनातन अस्तित्व है। शेष सब नाशवान हैं। अत एक छोटेसे शब्दसे समझने के लिए हम उसे 'सत्य' कह सकते हैं।

५ इस प्रकार परमेश्वर ही सत्य है, और सत्य परमेश्वर हैं।

६ यह ज्ञान सत्यरूपी परमेश्वरकी निर्गुण भावना है।

७ जो कुछ मुझे आज ऐसा धर्म्य, न्याय्य और योग्य प्रतीत होता है कि उसे करते, स्वीकार करते या प्रकट करते मुझे शर्म नही लगती, जो मुझे करना ही चाहिए और जिसे न करू तो इज्जतके साथ जी ही न सकू, वह मेरे लिए सत्य है। वही मेरे लिए परमेश्वरका सगुण रूप है।

८ सत्यकी अविश्रांत खोज किये जाना, तथा जैसा और जितना सत्य जान पड़ा हो उसका लगनके साथ आचरण करना—इसीका नाम सत्याग्रह है, और यह परमेश्वरके साक्षात्कारका साधन-मार्ग है।

९ सत्य अनंत और विश्व अपार होने के कारण इस खोजका कभी अंत नही आता। यों देखने पर जान पड़ता है कि परमेश्वरका संपूर्ण साक्षात्कार होने वाली बात नही है। साधकको चाहिए कि इससे उलझनमे न पड़े और न उस अपारको चाहे जहां बिलोने बैठ जाए। बल्कि उसे अपने जीवनमें जो बड़ी या छोटी, महत्वपूर्ण या तुच्छ-सी दिखाई देनेवाली प्रवृत्तियां अथवा क्रियायें करनी पड़ती है, उन्हींमें वह सत्यको ढूंढे और उसके प्रयोग करे, तो 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' न्याय से उसे सत्य मिल रहेगा।

१०. अपने आसपास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधर्मके प्रति उदासीन भावना रखनेवाला व्यक्ति सत्यका साक्षात्कार नही कर सकता। सत्यके शोधक-को इस असत्य, अन्याय और अधर्मके उच्छेदके लिए तीव्र पुरुषार्थ करना होता है और जबतक इनका सत्यादि साधनोसे उच्छेद करने में वह सफल नही होता तब-तक अपनी सत्यकी साधनाको अपूर्ण ही समझता है। अतः असत्य, अन्याय और अधर्मका प्रतिकार भी सत्याग्रहका आवश्यक अंग है।

११. सभी धर्म कहते है, इतिहास भी गवाही देता है और अनुभवमें भी आता है कि असत्य, हिंसा आदि से युक्त साधनोसे इस सत्यकी खोज करना असंभव है। उसी प्रकार संयम, व्रत, उपासना आदि से चित्तको शुद्ध करने का प्रयत्न किये बिना भी इनका ज्ञान नही होता। इसलिए आगे बतलाये जाने वाले व्रतादि ईश्वर-साक्षात्कारके अनिवार्य साधन माने गये है।

२

सत्य

१ सत्य अर्थात् परमेश्वर—यह सत्यका पर अथवा उच्च अर्थ है। अपर

अथवा साधारण अर्थमें सत्यके मानी हैं सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्म ।

२. जो सत्य है वही दूरकी दृष्टिसे हितकर अथवा भला है । इसलिये सत्य अथवा सत्का अर्थ भला भी होता है, और सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्म जो वस्तु है वही सदाग्रह, सद्विचार, सद्वाणी, और सत्कर्म हैं ।

३. जिन सत्य और सनातन नियमों द्वारा विश्वका जड़-चेतन विधान चलता है उनकी अविश्रान्त खोज करते तथा उनके अनुसार अपना जीवन बनाते रहना और असत्यका सत्यादि साधनों द्वारा प्रतिकार करना सत्याग्रह है ।

४ जो विचार हमारी राग-द्वेष-रहित, निष्पक्ष तथा श्रद्धा और भक्तियुक्त बुद्धिको सदाके लिए, या जिन परिस्थितियोंको हमारी दृष्टि देख सकती है उनमें जितने लम्बे समयके लिए संभव हो, उचित और न्याय प्रतीत हो, वह हमारे लिए सत्य विचार है ।

५ जो वाणी तथ्यको जैसा वह जानती है ठीक वैसा ही, कर्तव्य होने पर सामने रखती है और उसमें ऐसी कमी-बेशी करने का यत्न नहीं करती जिससे दूसरा अर्थ भासित हो वह सत्यवाणी है ।

६ विचारसे जो सत्य जान पड़े उसीके सविवेक आचरणका नाम सत्यकर्म है ।

७ पर सत्य जो परमेश्वर है, अपर सत्य उसे जानने का साधन है यह कहिए, अथवा सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्मकी—अर्थात् अपर सत्यके पालनकी—पूर्ण सिद्धि ही परमेश्वरका साक्षात्कार है यह कहिए, साधक के लिए दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

३

अहिंसा

१. साधारणतः लोग सत्य मानी 'सत्यवादिता'—सच बोलना, इतना ही स्थूल अर्थ लेते हैं । परन्तु सत्य-वाणीमें सत्यके पालनका पूरा समावेश नहीं होता ।

ऐसे ही सामान्यत लोग दूसरे जीवको न मारना, इतना ही अहिंसाका स्थूल अर्थ करते हैं, पर केवल प्राण न लेने से ही अहिंसा पूरी नही होती।

२. अहिंसा आचरणका स्थूल नियम मात्र नही है, बल्कि मनकी वृत्ति है। जिस वृत्तिमें कही द्वेषकी गध तक न हो वह अहिंसा है।

३ ऐसी अहिंसा सत्यके बराबर ही व्यापक है। इस अहिंसाकी सिद्धि हुए बिना सत्यकी सिद्धि होना अशक्य है। इसलिये सत्यको भिन्न रीतिसे देखें तो वह अहिंसाकी पराकाष्ठा ही है। पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसामें भेद नहीं है, फिर भी, समझानेके सुभीतेके लिए, सत्य साध्य और अहिंसा साधन मान ली गई है।

४ ये—सत्य और अहिंसा—सिक्केकी दो पीठोकी भाति एक ही सनातन वस्तुके दो पहलुओ के समान है।

५ अनेक धर्मोंमे जो 'ईश्वर प्रेमस्वरूप है' यह कहा गया है, वह प्रेम और यह अहिंसा भिन्न नही है।

६ प्रेमका शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। पर जिस प्रेममे राग या मोहकी गध आती हो वह अहिंसा नही हो सकता। जहा राग-मोह होता है वहा द्वेषका बीज भी होगा ही। प्रेममें बहुधा राग-द्वेष पाये जाते है। इसलिए तत्वज्ञोंने प्रेम शब्द-का प्रयोग न कर अहिंसा शब्द लिया और उसे परम-धर्म बतलाया।

७ दूसरेके शरीर या मनको पीडा न पहुचाना, इतना ही अहिंसा धर्म नही है, हां, साधारणत. इसे अहिंसा-धर्मका बाह्य लक्षण कह सकते है। दूसरोंके शरीर या मनको स्थूल दृष्टिसे दु ख या क्लेश पहुचता जान पडता हो तो भी उसमें शुद्ध-अहिंसा-धर्मका पालन होता हो, यह सभव है। दूसरी ओर यह हो सकता है कि इस प्रकार दु ख या पीडा पहुचानेका दोष लगाने लायक कुछ न करने पर भी किसी आदमीने हिंसाकी हो। अहिंसाका भाव दिखाई देनेवाले परिणाममे ही नही है, बल्कि अत करणकी राग-द्वेष-रहित स्थितिमे है।

८ तथापि दृष्टिगोचर लक्षणोकी उपेक्षा नही की जानी चाहिए। कारण यह कि यद्यपि यह स्थूल साधन है फिर भी अपने या दूसरेके हृदयमें अहिंसावृत्ति कितनी विकसित हुई है इसका इन लक्षणोंसे मोटा अंदाजा मिल जाता है। दूसरे

प्राणीको उद्वेग न हो ऐसी वाणी और कर्मको देखकर ही साधारण जीवनमें तो इस बातकी प्रत्यक्ष परख हो सकती है कि उस व्यक्तिमें अहिंसा कहा तक पोषित हुई है। अहिंसामय क्लेश देनेके मौके जरूर आते हैं, पर उस समय उनमें विद्यमान अहिंसा स्पष्ट दिखाई देती है। जहा स्वार्थका लेशमात्र भी है वहा पूर्ण अहिंसा सभव नही है।

९. पर इतनेसे अहिंसाकी साधना पूरी हुई नही समझी जा सकती। अहिंसा-का साधक केवल प्राणियोको उद्वेग पहुचानेवाली वाणी न बोलकर और कर्म न करके अथवा मनमें भी उनके प्रति द्वेषभाव न आने देकर सतोष नही मानता; बल्कि वह जगतमें फैले हुए दु खोको देखने-समझने और उनके उपाय ढूढने का प्रयत्न करता रहेगा, और दूसरोके सुख के लिए स्वय प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहेगा। मतलब यह कि अहिंसा केवल निवृत्ति-रूप कर्म या अक्रिया नही है, बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है।

१० अहिंसामें तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुई है। इसमें जो अमोघ शक्ति है उसकी अभी पूरी खोज नही हुई है। 'अहिंसाके समीप सारे वैर-द्वेष शांत हो जाते है', यह सूत्र शास्त्रो का प्रलाप नही है बल्कि, ऋषिका अनुभव वाक्य है। जाने-अनजाने, प्रकृतिकी प्रेरणासे, सब प्राणियोने एक दूसरेके लिए कष्ट उठानेका धर्म पहचाना है, और उसके आचरण द्वारा ससारको निभाया है। तथापि इस शक्तिका सम्पूर्ण विकास और सब कार्यों और प्रसगोमें इसके प्रयोगके मार्ग का अभी ज्ञानपूर्वक शोधन-सघठन नही हुआ है। हिंसाके मार्गोके शोधन और सघठन करने का मनुष्यने जितना दीर्घ उद्योग किया है, और उसका बहुत अशोंमें शास्त्र बना डालने में सफलता पाई है, उतना यदि वह अहिंसाकी शक्ति के शोधन और सघठनके लिए करे तो मनुष्यजातिके दु खोंके निवारणार्थ यह एक अनमोल, अचूक और परिणाममें उभयपक्षका कल्याण करनेवाला साधन सिद्ध होगा।

११ जिस श्रद्धा और उद्योगसे वैज्ञानिक प्रकृतिकी शक्तियोंकी खोज करते है और उसके नियमोको विविध प्रकारसे काममें लाने का प्रयत्न करते हैं,

वैसी ही श्रद्धा और उद्योगसे अहिंसाकी शक्तिकी खोज करने की और उसके नियमोंको काममें लाने का प्रयत्न करने की आवश्यकता है ।

४

ब्रह्मचर्य

१ जैसे अहिंसाके बिना सत्यकी सिद्धि संभव नहीं है वैसे ही ब्रह्मचर्य के बिना सत्य तथा अहिंसा दोनो की सिद्धि अशक्य है ।

२ ब्रह्मचर्यका अर्थ है ब्रह्म अथवा परमेश्वरके मार्ग पर चलना, अर्थात् मन और इंद्रियोको परमेश्वरके रास्ते पर रखना ।

३ रागादि विकारोके बिना अब्रह्मचर्य अर्थात् इंद्रियपरायणता नही हो सकती, और विकारी मनुष्य सत्य या अहिंसाका पूर्ण पालन नही कर सकता अर्थात् वह आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त नही कर सकता ।

४. अत ब्रह्मचर्यका अर्थ केवल वीर्यरक्षा अथवा कामजय मात्र नही है, बल्कि इसमें सभी इंद्रयोका सयम आवश्यक है ।

५ पर जैसे सत्यका स्थूल अर्थ सत्य वाणी और अहिंसा का स्थूल अर्थ प्राण न लेना हो गया है वैसे ही ब्रह्मचर्यका अर्थ भी केवल कामको जीत लेना किया जाता है । इसका कारण यह है कि मनुष्यको कामजय ही सबसे कठिन इंद्रियजय जान पड़ता है ।

६ वास्तवमें जीवनके सुखपूर्वक निर्वाह के लिये अन्य इंद्रियोका थोड़ा-बहुत भोग आवश्यक होता है । पर, ब्रह्मचर्यसे जीवन-निर्वाह अशक्य नही होता, उलटा अधिक अच्छी तरह होता है और तेजस्वी होता है ।

७ आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारीको जीवनकी पूर्णता तथा परमानंद प्राप्त करने की जितनी आशा और अनुकूलता है उतनी ब्रह्मचारीको नही है । ऐसे स्त्री-पुरुषोंका जीवन अविवाहित और विवाहित दोनोंके लिए दीपस्तंभरूप है ।

८. पर दूसरे प्राणियोकी अपेक्षा मनुष्य आहार-विहारमें अधिक स्वतंत्रता भोगता है और इससे वह समस्त इंद्रियोंके भोग अधिक भोगता है । फलत सालके

कुछ खास दिनोंमें ही उसे कामवेग नहीं होता, बल्कि वह निरंतर उसका पोषण करता है। यों कामविकार उसका सब दिनका रोग बन जानेसे उसे जीतना उसके लिए कठिन-से-कठिन हो गया है।

९ पर विचारशील मनुष्य देख सकता है कि दूसरी इंद्रियोंको पोसे बिना कामको बहुत पोषण नहीं मिलता और दूसरी इंद्रियोंको जीते बिना कामजयकी आशा रखना व्यर्थ है।

१० इस प्रकार प्रयत्न करने वाले स्त्री-पुरुषके लिए ब्रह्मचर्यका पालन साधारणत जितना समझा जाता है उतना कठिन नहीं है।

५

अस्वाद

इस प्रकार एक व्रत दूसरे व्रत को न्यौता देता है।

१ एक भी इंद्रिय स्वच्छंद बन जाय तो दूसरी इंद्रियोंपर मिला हुआ काबू ढीला पड जाता है। उनमें भी, ब्रह्मचर्य की दृष्टिसे, जीतने में सबसे कठिन और महत्वकी इंद्रिय जीभ है। इसपर स्पष्ट रूपसे ध्यान रहे कि इसके लिए स्वादजयको व्रतोंमें विशिष्ट स्थान दिया गया है।

२ शरीरमेंसे छीज जानेवाले तत्वोंको फिर पूरा करने और इस प्रकार शरीरको कार्य करने लायक स्थितिमें रखनेके लिए आहारकी आवश्यकता है। इसलिए यह दृष्टि रखकर ही जितने और जिस प्रकारके आहारकी जरूरत हो वही खाना चाहिए। स्वादके लिए—अर्थात् जीभ को रुचता है इसलिए—कुछ खाना या खुराकमें मिलाना अथवा अधिक आहार करना अस्वाद-व्रतका भंग है।

३ अस्वाद-वृत्तिसे चलने वाले संयुक्त भोजनालय में जाकर वहां जो भोजन बना हो उसमेंसे जो हमारे लिए त्याज्य न हो उस आहारको ईश्वरका अनुग्रह मान कर, मनमें भी उसकी आलोचना किए बिना, सन्तोषपूर्वक और शरीरके लिए जितना आवश्यक हो उतना खा लेना, अस्वाद-व्रतमें बहुत सहायक है।

६
अस्तेय

१ अस्तेयका अर्थ दूसरेके स्वामित्ववाली वस्तुको न लेनाभर नही है। अपनी मानी जाती हो पर अपनेको उसकी जरूरत न हो, फिर भी हम उसका उपयोग करते हो तो यह भी चोरी ही है। दूसरोकी चीज पर नजर बिगाडना मानसिक चोरी है। दूसरोके विचार अथवा खोज-शोधको जानकर अपनी बनाकर पेश करना विचारकी चोरी है।

२ हम जगतकी समस्त वस्तुओपर परमेश्वरका स्वामित्व समझें और प्राणिमात्रको उनके कर्त्ता-हर्त्तापनमे रहनेवाले एक विशाल कुटुबरूप समझे, तो जगतमेसे नितात आवश्यक वस्तुओ भर के उपभोगका अधिकार हमे रहता है। उसपर इससे अधिक अधिकार मानना चोरी है।

७
अपरिग्रह

१ अस्तेय और अपरिग्रहमे बहुत थोडा भेद है। जिसकी हमे आज आवश्यकता नही है उसे भविष्यकी चितासे सग्रह कर रखना परिग्रह है। परमेश्वर विश्वास रखनेवाला यह मानता है कि जिस वस्तुकी जब सच्ची आवश्यकता होगी तब वह अवश्य प्राप्त हो जायगी। इसलिए वह किसी चीजका सग्रह करनेके फेर में नही पडता।

२ इसका अर्थ यह नही है कि जो शक्तिमान होते हुए भी श्रम नही करता उसकी भी आवश्यकताये परमेश्वर पूरी करता है। जिसकी मेहनत करनेकी नीयत नही है, जो मेहनतको मुसीबत समझता है उसके अन्दर तो यह विश्वास ही नही जमता कि परमेश्वर सबकी आवश्यकतायें पूरी करनेवाला है। वह तो अपनी परिग्रह-शक्तिपर ही भरोसा रखता है। पर जो शक्ति होनेपर पूरापूरा श्रम करता है और श्रम करने में ही प्रतिष्ठा समझता है किन्तु अपरिग्रही रहता है, उसके निर्वाह की चिता परमेश्वर करता है।

३ फिर इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजमे रहकर इस व्रतका पालन करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य अपने पास आई हुई वस्तुओको रास्तेमें डाल आये या खराब होने दे। वह अपनेको उन वस्तुओका रक्षक समझे और उनकी पूरी हिफाजत रखे, पर पलभर के लिए भी अपनेको उनका मालिक न माने। अत. जिन्हें उनसे काम लेने की आवश्यकता हो उन्हे उनका इस्तेमाल करने देने में बाधक न हो। अपने या अपने बाल-बच्चोके काम आने के ख्यालसे जो एक चिथडा भी बटोर रखता है और दूसरेको जरूरत होते हुए भी इस्तेमाल नही करने देता वह परिग्रही है। जो ऐसी वृत्तिसे रहित है उसकी गद्दी लाख रुपयेकी राशि पर लगती हो तो भी वह अपरिग्रही है।

८

शरीर-श्रम

१ जीवनके लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करनेके हेतु स्वय शारीरिक श्रम करना अस्तेय और अपरिग्रहमेंसे निकलनेवाला सीधा नियम है। परिश्रमके बिना जो पदार्थ नही उपजते और जिनके बिना जीवन टिक नही सकता, उनके लिए स्वय शारीरिक श्रम किये बिना उनका उपभोग करे तो जगतके प्रति हम चोर ठहरते है।

२ पारमार्थिक भावसे ऐसा श्रम करने का नाम यज्ञ है। अपने श्रमसे उत्पन्न पदार्थोंका स्वय ही उपभोग करने की अभिलाषा रखना सकाम कर्म कहलायेगा। वैसी अभिलाषाके बिना इतने पदार्थ जगतके लिए पैदा होने ही चाहिए, यह मानकर श्रम करना निष्काम कर्म है और वह यज्ञ है।

३ मैला, कूडा-करकट आदि अनर्थकारी पदार्थोंकी उचित व्यवस्थाके लिए किया हुआ श्रम भी यज्ञका ही एक प्रकार कहा जा सकता है। ऐसा श्रम हर एकको अवश्य करना चाहिए।

४ इस दृष्टिसे देखने पर जान पडता है कि हम सब जो पढे-लिखे कहलाते हैं वे अपनी मेहनतसे जितना पैदा कर सकते है उससे बहुत अधिक पदार्थोंका उपभोग करते हैं और बेकारका सग्रह कर रखते हैं। इसके सिवा अनर्थकारी वस्तुओंकी उचित व्यवस्थाके लिए तो हम शायद ही शारीरिक श्रम करते हो। इससे

अनेक प्राणियोंको तंगी और तकलीफ भुगतनी पडती है। यानी हम अस्तेय और अपरिग्रह-व्रतका पलपल पर भंग करते हैं।

५ अतः हमारे लिए अस्तेयादि व्रतोंकी ओर आगे बढ़नेमें जरूरी कदम यह है कि अपनी आवश्यकताओं और निजी परिग्रहको जितना हो सके उतना घटाते जायें, और उत्पादक श्रम तथा अनर्थकारी पदार्थोंकी समुचित व्यवस्थामें निष्काम भाव और यज्ञबुद्धि से नियमपूर्वक जाती मेहनत के रूप में अपना भाग अर्पण करें।

६ इसके लिए आजकी भारतवर्षकी स्थितिमें कताई तथा मलमूत्र साफ करके इनकी उचित व्यवस्था करना आश्रममें यज्ञकर्म माना गया है। इसका अधिक विचार आगे होगा।

९
स्वदेशी

१ शरीर-श्रमके सिद्धांतमेंसे ही स्वदेशी धर्मका उद्भव होता है।

२ अस्तेय और अपरिग्रहका आदर्श रखनेवाला मनुष्य दूसरेकी मेहनतका लाचारी दरजे ही उपयोग करेगा।

अपना खाना पकाने, कपडे धोने, मलमूत्र साफ करने, बरतन मांजने, हजामत बनाने, झाडू देने इत्यादि रोज के निजी कामों के खुद न करने में अथवा दूसरोंसे कराने में मान या प्रतिष्ठा है, यह समझकर दूसरोंसे इन्हें न करायेगा। पर अपनी असमर्थता या प्रेमके कारण अथवा अंगीकृत कार्योंमें सुभीतेकी दृष्टिसे हुए श्रम-विभाग के फलस्वरूप वह ऐसी सेवा ले सकेगा। इसमें अमुक काम बडा है, अमुक छोटा है, अमुक काम करनेवाला, केवल कामकी किस्मके कारण ही, आदरका अधिकारी है और दूसरा तुच्छ है, इस भावकी गंध भी न होनी चाहिए।

३ ऊपर सूत्रोंमें बताया गया सिद्धांत आदर्शरूप है। स्वावलंबनकी इस भावनाका विस्तार करने और जगतमें व्यवहारकी जो रीतियां प्रत्यक्षतः चल रही हैं उनका विचार करनेसे मालूम होता है कि हमारी कितनी ही आवश्यक-ताओंकी पूर्तिके लिए कुटुंब या साथियोंके साथ ही सहयोगमूलक श्रम-विभाग

कर लेना काफी नहीं होता, बल्कि पड़ोसियों और ग्रामवासियोंके साथ भी सहयोग और श्रम-विभाग करना पड़ता है। इसीमें से स्वदेशी धर्म की उत्पत्ति है।

४ स्वदेशी-व्रत केवल स्वदेशाभिमानके विचारमें से नहीं उपजा है, बल्कि धर्मके विचारमे से उपजा है। समग्र विश्वके साथ बंधुत्वकी भावना के लिए हमारा प्रयत्न होते हुए भी, जिन पड़ोसियों के बीच हमारा जीवन दिन-रात गुजरता है, और अनेक विषयोंमें जिनके साथ हमारे सम्बन्ध जुड़े हुए हैं और जुड़ते रहते हैं, उन्हींके साथ हमारा पहला व्यवहार होना उचित है। ऐसे धर्म-युक्त व्यवहारकी अवगणना करके विश्वबंधुत्वकी सिद्धि नही हो सकती, केवल दिखावाभर होता है।

५ केवल राष्ट्रीयताकी भावनासे उपजा हुआ स्वदेशीका विचार विदेशियोंके हित की उपेक्षा कर सकता है और उनका अहित करनेके मौकेकी ताकमें भी रह सकता है। धर्म-रूप स्वदेशी भावना स्वराष्ट्रका कल्याण साधते हुए भी परराष्ट्र का अकल्याण न चाहेगी, न करनेकी चेष्टा करेगी।

१०

अभय

१ जो मनुष्य अपने मनके विकारोंके सिवा अन्य आपत्तियोंका भय रखता है वह अहिंसाका पालन नहीं कर सकता। इसलिए दैवी संपत्तियोंमें अभय पहला प्राप्त करने योग्य गुण है।

२ मौत, शरीर, क्लेश, मारकाट, धननाश, जुल्म और अत्याचार, मानहानि, लोकनिंदा, काल्पनिक वहम, कुटुंब-क्लेश, अथवा कुटुंबियों को दुःख होगा, यह विचार इत्यादि बीसों बातोंसे मनुष्य आमतौर पर डरता ही रहता है—डरने वाला मनुष्य धर्माधर्मका गहरा विचार करनेका साहस ही नहीं कर सकता। वह सत्यको खोज नहीं सकता और न खोजकर उसे पकड़े रह सकता है। इस प्रकार उसके द्वारा सत्यका पालन नहीं हो सकता।

३ मनुष्यके डरनेकी एक ही वस्तु है—अपना विकारी चित्त। ईश्वरका डर कहिए, अधर्मका डर कहिये, या अपने विकाररूपी शत्रुका डर कहिए, तीनों

एक ही हैं। विकार न हो तो अधर्म नही हो सकता, और अधर्म न हो तो 'ईश्वर का डर' यह शब्द-प्रयोग ही अयुक्त हो जाता है।

११

नम्रता

१ नम्रताका गुण अहिंसाका ही एक अङ्ग कहा जा सकता है। जहा अहकार है वहा नम्रताकी न्यूनता है, अहकारी सर्वात्मभाव नही रख सकता, इसलिए उसकी अहिंसामे कमी पड़ती है।

२ शून्यवत हो रहना नम्रताकी पराकाष्ठा है। मै भी कुछ हू, मुझमे कुछ विशेषता है—शरीर, मन, बुद्धि, विद्या, कला, चतुराई, पवित्रता, ज्ञान, भक्ति, उदारता, व्रतपालन अथवा स्वय विनयादि गुणोंके विषयमे भी ऐसा भान रहना और इससे अपना अस्तित्व ऐसा जान पडना—जैसे कोई बोझ लादे चल रहे हों, अहकार है। ऐसा भान कम-से-कम होना—जैसा अपने शरीरके नीरोग अवयवोके विषयमें होता है वैसा—यह शून्यवत स्थिति अथवा नम्रता है।

३ ऐसी नम्रता अभ्याससे नही प्राप्त की जा सकती, बल्कि अनेक सद्‌गुणो और विचारमय जीवनके फलस्वरूप स्वभावमे अपने-आप प्रकट होती है। नम्र मनुष्यको अपनी नम्रताका भान तक नही होता।

४ अकसर बाहरी नम्रताकी ओटमे सूक्ष्म और तीव्र अभिमान छिपा होता है। यह नम्रता नही है।

५ अपनी मर्यादाओको समझना और उन्हींके अदर रहना भी नम्रताका आवश्यक लक्षण है।

६ नम्र मनुष्य दुनिया भरके काम कर डालनेकी हवस नही रखता, किंतु अपनी मर्यादा निश्चित करके उसके सिद्ध होनेतक उसके बाहर कदम नही रखता।

७ सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोका साधक यह जान ले कि इनके पालनकी अपनी शक्ति आदर्शके अनुपातमे कितनी अल्प है तो वह अपने आप नम्र रहे।

८ एक ओर तो वह सत्य, अहिंसा, आदिमें अतर्निहित शक्तियोमें अपनी

श्रद्धा कम न होने दे और दूसरी ओर इनकी चरम सीमातक पहुचनेकी अपनी अल्प शक्तिको देखकर हिम्मत न हारे, किन्तु नम्रतापूर्वक अपनी मर्यादाको समझकर इन सबकी जीवनमें अवतारणा करने का सदा यत्न करता रहे।

९ आदर्शोंको पहुचने में अपनी कमियोकी ओर नम्र मनुष्य आखें बंद नहीं किये रहता। इन कमियोको वह निष्कपट भावसे स्वीकार करता है, उनका बचाव करनेके लोभमें नही फसता।

१२

व्रत-प्रतिज्ञा

१ व्रतका अर्थ है—जो आचरण अपनेको सत्य विचारका अनुसरण करनेवाला जान पडता हो उसपर अविचल भावसे स्थित रहने और उसके विपरीत आचरण कभी न करनेकी प्रतिज्ञा।

२ इस अविचलतामें जितनी ढिलाई आयेगी, सत्यके दर्शनमें उतनी ही कचाई रह जायेगी।

३ सदा सत्यरूपी परमात्मामे ही स्थिति रहनेके लिए—अर्थात् मन-वचन-कर्मसे सत्यनिष्ठ ही रहने की स्थिति प्राप्त करनेके लिए—ऐसी प्रतिज्ञाए आवश्यक है।

४ असावधानी या कुसगतिके कारण अथवा पहिलेकी बुरी आदतो या कुसस्कारोंके कारण, मन किये हुए निश्चयोपर स्थिर नही रह पाता। इसलिए उसे व्रतरूपी बेडियोसे कसना उसे स्थिर करने का अच्छा उपाय है।

५ यह स्पष्ट है कि जो आग्रह, विचार, वाणी और कर्म सत्य हो उन्हीके लिए व्रत हो सकता है। असत्य आग्रह, असत्य विचार, असत्य वाणी अथवा असत्य कर्म करनेका व्रत नही लिया जा सकता और लिया हो तो उसे छोड़ देना पड़ता है। व्रतमें ऊर्ध्वगमन है, परिश्रम है। वह असत्य या भोगादिमें नहीं होता। इससे भोग करनेका व्रत नही हो सकता।

६ असत्य न हो तो लिया हुआ व्रत छोड़ा नहीं जा सकता। उसके पालनमें आनेवाली कठिनाइयोको झेलना ही होगा।

१३

उपासना-प्रार्थना[1]

१ उपासनाका अर्थ है परमेश्वरके पास बैठना। बड़ोंके पास बैठने के मानी हैं तद्रूप होना। परमेश्वर अर्थात् सत्य। इसलिए सत्यरूप होनेका नाम है उपासना। सत्यरूप होने की तीव्र इच्छा करना, भगवानसे बिनती करना प्रार्थना है।

२ सत्यरूप होनेका अर्थ है निर्विकार होना। निर्विकार होनेके लिए विकारी विचार भी उत्पन्न न होने देने चाहिए। मन खाली नही रहता—या तो विकारी विचार करेगा अथवा सत्यकी ओर जायगा। रामकृष्णादि सत्यके मूर्तिरूप हैं। इसलिए इन्हीका स्मरण नामस्मरण है। यह स्मरण हृदयसे हो तो स्मरण करनेवाला तद्रूप अवश्य हो जायगा।

३ उपासना बुद्धिका विषय नही है, श्रद्धाका विषय है। उपासना करते-करते शुद्ध होना निश्चित ही है। ऐसी श्रद्धा रखकर नित्य उपासना करनी ही चाहिए। जैसे शरीरको अन्नादि पोसते हैं वैसे आत्माको उपासना पोसती है।

४ सत्यरूप ईश्वर सबमें बसता है, इसलिए जीवमात्रसे ऐक्यसाधन आवश्यक है। अतः उपासना व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनो होनी चाहिए।

५ जीवमात्रके साथ ऐक्य साधनेका अर्थ है उनकी सेवा करना। इससे निष्काम सेवा भी उपासना ही मानी जायगी।

१४

व्रतोंकी साधना

१ गायको बचानेके लिए झूठ बोला जा सकता है या नही, सांप-सरीखे प्राणियोको मार सकते है या नही, स्त्रीपर बलात्कार करने वाले अत्याचारीको

१ यह प्रकरण गांधीजीने स्वयं लिखा है।—कि० घ० मु०

पशुबलसे रोका जाय या नहीं, ऐसी-ऐसी तार्किक उलझनोंमें पड़कर व्रतोंकी साधना नहीं हो सकती। ये गुत्थियां बुद्धिके रास्तेसे कब सुलझनी होंगी सुलझ जायेंगी, और यदि हमने जीवनके दैनिक और सामान्य अवसरोंपर व्रतोंकी साधना ठीक तौरसे की होगी तो कठिन अवसरोंपर खुद हमें क्या करना है, इसका ज्ञान हमें अपने आप हो जायगा।

२ दैनिक और सामान्य प्रसंगोंके कुछ उदाहरण:—

(क) असत्याचरणके—किसी चीजको बुरा समझते हुए भी अच्छा बताना कहा या भला, अच्छा कहलानेकी इच्छासे अपनेमें न होनेवाले गुणोंका ढोंग करना, बोलनेमें अत्युक्ति करना, अपने दोष जिनके सामने प्रकट करने चाहिए उनसे छिपाना, साथी या अफसरके प्रश्न का बातको उड़ा देनेवाला उत्तर देना, बताने योग्य बातको छिपाना, विश्वासका भंग करना, वादेको तोड़ना, इत्यादि।

(ख) हिंसाके—किसीका अपमान, तिरस्कार करना, खराब चीज दूसरेको देना और अच्छी खुद लेना, अपने कामसे जी चुरा कर साथी पर उसका बोझ डाल देना, पड़ोसी या साथीके दुःख या बीमारीमें हमदर्दी रखनेमें चूकना, अपने पास होते हुए भी भूखे-प्यासेको अन्न-पानी न देना, अतिथिका सत्कार न करना, मजदूरसे तुच्छतापूर्वक बोलना और उसपर बिना सोचे-विचारे काम लादे जाना, जानवरको कांटे, डंडे, गाली आदिसे पीड़ा पहुंचाना, भोजनमें, भात कच्चा रह गया, दाल में नमक अधिक हो गया, साग रुचिकर नहीं है—जैसी छोटी-छोटी बातों पर खीजना, इत्यादि।

इसी प्रकार दूसरे व्रतोंके विषयमें भी समझना चाहिए।

३ ब्रह्मचर्यके पालनमें नीचे लिखी सूचनायें उपयोगी हो सकती हैं:

(क) लड़के-लड़कियोंका सादे और प्राकृतिक ढंगसे, वे जीवनभर निर्मल रहेंगे इस विश्वाससे, पालन-पोषण करना।

(ख) सबको मिर्च-मसाले, उत्तेजक पदार्थ, चरबी-चिकनाईवाली भारी खुराक, दुष्पाच्य मिष्टान्न, मिठाइयां और तली हुई चीजोंका खाना छोड़ देना चाहिए।

(ग) पति-पत्नीका अलग-अलग कमरेमें सोना और एकांत बचाना।

(घ) शरीर और मन दोनोंको सदा सत्कार्योंमें लगाये रखना।

(ङ) रातको जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठनेके नियमका कड़ाईसे पालन करना।

(च) किसी भी प्रकारका बीभत्स और हलका साहित्य न पढ़ना। मलिन विचारोंकी दवा निर्मल विचार है।

(छ) थियेटर, सिनेमा आदि मनोविकारोंको जगानेवाले तमाशे न देखना।

(ज) स्वप्नदोष हो तो घबरा न जाना चाहिए। तदुरुस्त आदमीकेलिये इसका अच्छे-से-अच्छा इलाज है उसी समय ठंडे पानीसे नहा लेना। कभी-कभी स्त्री-संग कर लेना स्वप्नदोष का इलाज है, यह ख्याल गलत है।

(झ) सबसे महत्वकी बात तो यह है कि किसी भी व्यक्ति के लिये —पति-पत्नी तक में—संयम कठिन है, या शरीर और मनके लिये हानिकारक है, अथवा विषय-भोग आरोग्य-दृष्टिसे आवश्यक है, ऐसी रायों पर तनिक भी विश्वास नहीं रखना चाहिए। उलटा सबको चाहिए कि संयमको जीवनकी स्वाभाविक और साधारण स्थितिकी भांति मानकर चलें।

(ञ) नित्य उठकर पवित्रता और निर्मलताके लिये एकाग्र चित्तसे प्रभुकी प्रार्थना करना, रामनाम या ऐसे किसी अन्य मंत्रका सहारा लेना विषय-वासनाको जीतने का सुनहरा नियम है[१]।

४ (क) प्रार्थनामें सोना, आलस करना, बात करना, ध्यान न देना, मनको यहां-वहां भटकने देना, आदिको प्रार्थनाका छूट जाना समझना चाहिए। ऐसा अनिच्छासे हो तो इसे दूर करनेकेलिये प्रार्थनामें आनेके पहले ही जाग जाना, उठकर दातुन करना और ताजा रहनेका निश्चय करना चाहिए। तथापि शरीर काबूमें न रहे तो, छोटा हो या बड़ा, उसे शर्म न करके खड़ा हो जाना चाहिए।

---

१ इस विषयपर जो अधिक पढ़ना चाहें वे 'मंडल' से प्रकाशित गांधीजीकी 'अनीतिकी राहपर' नामक पुस्तक पढ़ें।

(ख) प्रार्थनामें एक दूसरेसे सटकर नही बैठना चाहिए, लकडेकी तरह सीधा बैठना और धीरे-धीरे सास लेनी चाहिए।

(ग) प्रार्थनामें श्लोक, भजन आदिका उच्चारण और ध्वनि सीखनेकी कोशिश करनी चाहिए। जबतक ये न आयें तबतक जोरसे न बोलकर मनमें ही बोलना चाहिए। यह भी न आये तो केवल रामनाम लेना चाहिए।

(घ) प्रार्थनामें जो कुछ कहा जाता हो उसका अर्थ समझ लेना और उसका मनन करना चाहिए।

(ङ) प्रार्थना व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों महत्वकी है। दोनो एक-दूसरेकी पोषक है। व्यक्तिगत प्रार्थनाका मूल्य न समझनेसे सामुदायिक प्रार्थनामे रस नही मिलता, और सामुदायिक प्रार्थनाका लाभ व्यक्तिको नही होता। अत प्रत्येकको व्यक्तिगत प्रार्थना भी नियमित रूपसे करनी चाहिए।

(च) इसके दो वक्त तो खास है—उठते ही और रातको आंख मूंदनेसे पहिले। पर यह न मान लेना चाहिए कि यह दो ही समय व्यक्तिगत प्रार्थनाके हैं। प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक क्षणमें ईश्वरको साक्षी बनाना व्यक्तिगत प्रार्थना है। इसके लिए किसी खास मत्र या भजनकी आवश्यकता नही है। इसमे कोई चाहे जिस नामसे, चाहे जिस ढगसे और चाहे जिस स्थितिमें ईश्वरको याद करना है। हर सासके साथ रामनाम निकले इस स्थितिको पहुचना प्रार्थनाका आदर्श है।

(छ) फिर भी इसमें समय लगता है यह नही मानना चाहिए। इसमें समयकी आवश्यकता नहीं है बल्कि अमूर्छित रहनेकी—सतत सावधानता और जागृतिकी—तथा मलिनताके त्यागकी आवश्यकता है।

खण्ड २ : : धर्ममार्ग

१

सर्वधर्म-समभाव

१ प्रत्येक युग और प्रत्येक राष्ट्रमें सत्यके गहरे खोजी और जन-कल्याणके लिए अत्यन्त लगन रखनेवाले विभूतिमान पुरुष और संत पैदा होते हैं। उस युगके और उस जन-समाजके दूसरे लोगोंकी अपेक्षा वे सत्यका कुछ अधिक साक्षात्कार किये हुए होते हैं। इनका कुछ साक्षात्कार सनातन सिद्धांतोंका होता है, और कुछ अपने जमानेकी परिस्थितिमेंसे उपजा हुआ होता है। इसके सिवा ऐसा होता है कि कितने ही सिद्धांत अपने सनातन स्वरूपमें उनकी समक्षमें आनेपर भी, उन्हें कार्यरूप देनेको उद्यत होनेपर उस युग और देशकी परिस्थितिसे उसका मेल ही रहे ऐसी मर्यादाके अन्दर ही उसकी प्रणाली उन्हें सूझती है। इन सबमेंसे ही जगतके भिन्न-भिन्न धर्मोंकी उत्पत्ति हुई है।

२ इस रीतिसे विचार करनेवाला किसी धर्ममें सत्यका सर्वथा अभाव नहीं देखता, वैसे ही किसी धर्मको सम्पूर्ण सत्यके रूपमें नहीं स्वीकार करता। वह सभी धर्मोंमें परिवर्तन और विकासकी गुंजाइश देखेगा। उसे दिखाई देगा कि विवेकपूर्वक अनुसरण करनेपर प्रत्येक धर्म उस प्रजाका कल्याण-साधन कर सकता है और जिसमें व्याकुलता है उसे सत्यकी झांकी कराने तथा शांति और समाधान देनेमें समर्थ है।

३ ऐसा मनुष्य यह अभिमान नहीं रखता कि उसीका धर्म श्रेष्ठ है, और मनुष्यमात्रको अपने उद्धारके लिये उसीका स्वीकार करना चाहिए। वह उसे छोड़ेगा भी नहीं और उसके दोषोंकी ओरसे आंखें भी नहीं मूंदेगा। वह जैसा आदर-भाव अपने धर्मके प्रति रक्खेगा वैसा ही दूसरे धर्मों और उनके अनुयायियोंके प्रति भी रक्खेगा, और चाहेगा यही कि प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने धर्मके ही उत्तमोत्तम सिद्धांतोंका यथोचित रीतिसे पालन करे।

४ निंदक-बुद्धि पर-धर्ममें छिद्र ही देखेगी। सत्यशोधकको प्रत्येक धर्ममें सत्यका जो अंग विकसित जान पड़ेगा उसका वह अंश ग्रहण कर लेगा। इससे सत्यशोधक पुरुषके बारेमें प्रत्येक धर्मके अनुयायीको ऐसा जान पड़ेगा मानो वह उसीके धर्मका सच्चा अनुयायी है। इस प्रकार सत्यशोधक अपने जन्म-धर्मका त्याग किये बिना सब धर्मोंका अनुयायी-सा प्रतीत होगा।

२

धर्म और अधर्म

१ सत्यशोधक सब धर्मोंके प्रति समभाव रक्खेगा, पर वह अधर्मका तो विरोध ही करेगा, फिर चाहे वह अधर्म अपने या दूसरे धर्मके नामपर होता हो या स्वतन्त्र रूपसे चल रहा हो।

२ सब धर्मोंमें कुछ अपूर्णता होनेके कारण प्रत्येक धर्ममे धर्मके नामपर अधर्म पैठ जाता है। और यह दाखिल होता है धर्मके नामपर, इसलिये धर्म और अधर्ममें भेद करना कठिन हो जाता है, पर यह करना ही पड़ता है।

३ किसी भी धर्ममें हुए प्रसिद्ध व्यक्तियोंके जीवन-चरित्रमें दोष मालूम होनेपर उसपर जोर देकर उस धर्मकी निंदा करना निंदककी रीति है। परन्तु ऐसा दोष दूसरोंके लिए आचरण करने योग्य नियमकी भांति पेश किया जाय तो यह अधर्म है और इसका विरोध किया जा सकता है।

४ साधारणत यह कहा जा सकता है कि जो आचार सत्य आदि यम-नियमोंके इस प्रकारसे विरोधी है कि वे इन धर्मोंके विकासका नहीं बल्कि इनके भंगका पोषण करनेवाले है वे अधर्म हैं। इसका निर्णय करना है तो कठिन, पर भक्तिमान और विवेकी सत्यशोधकको यह सूझ जाता है।

५ सत्यशोधक अधर्मका सर्वत्र विरोध करेगा, पर इसके साथ ही वह अधर्मी और अधर्ममें भेद करेगा। अधर्मका विरोध करते हुये भी वह अधर्मीसे द्वेष न करेगा। इसका दूसरा अर्थ यह हुआ कि वह अधर्मीका असत्य और अहिंसामय साधनो द्वारा ही विरोध करेगा। अधर्मका नाश करनेके लिए असत्य, हिंसा आदि अधर्मयुक्त साधनोंका उपयोग करके अधर्मके जवाब में अधर्म नहीं करेगा।

३

सत्याग्रह

१ इस प्रकार हम सत्याग्रह के तत्वपर आ पहुंचे। सत्याग्रहकी संक्षिप्त व्याख्या यों हो सकती है—सत्यादि धर्मोंका स्वयं पालन करनेका आग्रह, और अधर्मका सत्यादि साधनोंके द्वारा ही विरोध।

२ विरोध करनेमें खासकर अहिंसाके भंगकी संभावना रहती है, इसलिए अहिंसापर जोर देकर कहा जाता है कि अधर्मका अहिंसामय साधनसे विरोध, सत्याग्रह है। 'सत्याग्रह' के नामसे जिस युद्धविधिका प्रचार हुआ है उसके शुद्ध प्रकारकी यह स्थूल व्याख्या दी जा सकती है।

३ अधर्मके विरोधके लिए आचरणीय सत्याग्रहका सविस्तार विचार आगे किया जायगा। यहां इतना ही कहना काफी होगा कि सत्यादि धर्मोंका स्वयं पालन करनेके आग्रहमें जितनी सिद्धि मिली होगी, उतनी ही अधर्मके विरोधरूप सत्याग्रहके आचरणकी शक्ति आयेगी और उसकी उचित रीतियां सूझती जायेगी।

४ पर ऐसी शक्तिका आना सत्याग्रही जीवनका दूसरा और दृश्यफल माना जायगा। यह दूसरा फल उपजे या न उपजे, इसका मुख्य फल तो ऐसे जीवनके फलस्वरूप पैदा होनेवाली सत्यरूपी परमेश्वरकी पहचान ही है।

४

हिन्दू धर्म

१ हिन्दूके लिए हिन्दूधर्म यथेष्ट है। सत्यशोधकको अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके लिये इसमें यथेष्ट सामग्री मिल जाती है।

२ श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, संतोंकी संस्कृत अथवा प्राकृत वाणी इत्यादि सनातन हिन्दूधर्मके धर्मग्रन्थ हैं। ग्रंथोंमें भिन्न-भिन्न ऋषियों, मुनियों, कवियों और विचारकोंने धर्मके भिन्न-भिन्न अंग भिन्न-भिन्न रीतियोंसे समझाये हैं। इन सारे वचनोंका मूल्य समान नहीं माना जा सकता और कितने ही तो अग्राह्य भी लगते

हैं। तथापि नीर-क्षीर-विवेकसे देखनेवाले जिज्ञासुको अपनी धर्मवृत्तिका पोषक साहित्य इसमें प्रचुर परिमाणमें मिल सकता है।

३. सनातन हिन्दूधर्म एक सच्चिदानंद परमात्माको ही स्वीकार करता है और उसे मन-वाणीसे परे बताता है। फिर भी सब परमात्मरूप है इस सिद्धांतसे तथा विभूतिके सिद्धांतसे उपासककी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारकी कल्पनाओं और रूपकोंके द्वारा भिन्न-भिन्न आदर्शोंके निदर्शक देवी-देवताओं और ऐतिहासिक व्यक्तियोंका अवतार रूपमें वर्णन करके उनकी और सद्गुरुकी उपासना करनेकी भी उसमें स्वतन्त्रता है। सनातन हिन्दूधर्मकी दृष्टि ऐसी दो उपासनाओंके बीच विरोध नहीं देखती बल्कि मेल बैठाती है। इससे सनातन हिन्दूधर्ममें मूर्तिपूजाका निषेध नहीं है।

४ सनातन हिन्दूधर्म पुनर्जन्म और मोक्षके सिद्धांतोंको स्वीकार करता है और मोक्षको अन्तिम तथा श्रेष्ठ पुरुषार्थ समझता है, और उसके लिए यम-नियम, व्रत-संयम, तीर्थयात्रा इत्यादि साधनोंको स्वीकार करता है।

५ सनातन हिन्दूधर्ममें वर्णाश्रम-व्यवस्थाको बड़ा महत्त्व दिया गया है। यह भी कहा जा सकता है कि यही उसकी विशेषता है। इसलिए हिन्दू धर्मको वर्णाश्रम धर्मका नाम भी दिया जा सकता है। इसी प्रकार गोरक्षा भी इस धर्मका सबसे बड़ा बाह्य रूप है। पर इन दोनोंका विचार स्वतन्त्र रूपसे अन्यत्र होगा।

६ "वैष्णव जन तो तेने कहिये" पदमें दिये गये लक्षण सनातन हिन्दूधर्मके सच्चे चिन्ह हैं।

५

गीता-रामायण

१ हिन्दूधर्ममें अनेक माननीय ग्रंथोंके होते हुए भी नित्यके और साथ ही गहरे अध्ययन और मननके लिए संस्कृतमें गीता और हिन्दीमें तुलसीदासका 'रामचरितमानस' ये दो ग्रंथ सबसे अधिक महत्वके और साधारणतः पर्याप्त समझे जा सकते हैं।

२ तत्त्वज्ञान और सूक्ष्म विवेचनके लिए गीता और काव्यमय कथानकों द्वारा साधारण मनुष्योंके भी समझने और ग्रहण करने योग्य प्रकारसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदिके निरूपण के लिए तुलसीकृत रामायण, ये दो हिन्दूधर्मकी बेजोड़ पुस्तके है।

३ अनासक्तियोग गीताका ध्रुवपद है—अर्थात् कर्मके फलकी अभिलाषा छोड़कर कर्तव्य कर्मोंको सतत करते रहनेका उपदेश उसकी ऐसी ध्वनि है जो कभी भुलाई न जाय। इसमें कर्ममात्रका निषेध नही किया गया है, न यही कहा गया है कि कर्ममें विवेक मत करो। इसमे दुष्कर्मका निषेध है और सत्कर्मको भी फलासक्ति छोडकर करनेका उपदेश है। सत्य, अहिंसादिके सपूर्ण पालनके बिना इस योगकी सिद्धि होना असभव है।

४ गीताका पाठ, वाचन और मनन कभी पुराना नही पडता। ज्यो-ज्यो इसका विचार और तदनुसार आचरण करते जाइये त्यो-त्यो इसकी पुनरावृत्तिसे नया-नया बोध मिलता ही रहेगा। इतना ही नही, गीतामे आये हुए महाशब्दोंके अर्थ युग-युगमें बदलते रहेंगे और विस्तार पाते जायेगे।

खण्ड ३ : : समाज

१

वर्णाश्रम

१ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हिन्दूधर्मका सच्चा नाम वर्णाश्रमधर्म है यह कह सकते है। वर्णाश्रम-व्यवस्था इस धर्मकी विलक्षणता प्रकट करती है। इसका मूल वेदमे ही है।

२ प्रत्येक धर्मकी कुछ-न-कुछ विशेषता होती ही है। हिन्दुओने जिस धर्मका पालन किया है उसे अगर कोई विशेष और सार्थक नाम दिया जा सकता है तो वह वर्णाश्रम-धर्म ही है।

३ इस कारण कोई हिन्दू वर्णाश्रमकी उपेक्षा नही कर सकता। इस प्रथाको समझकर सदोष जान पडे तो इसका ज्ञानपूर्वक त्याग किया जा सकता है, और यदि यह प्रथा धर्मकी निर्दोष विशेषता हो तो, (और है इसलिये) इसका पोषण तथा पुनरुद्धार कर्त्तव्य है।

४ वर्णाश्रम-व्यवस्था समाज-रचनाकी मनमानी व्यवस्था नही है, बल्कि इसके पीछे सिद्धातका ज्ञान विद्यमान है। अर्थात् उसके पीछे मानव-मात्रको लागू होनेवाले नियमोका ज्ञान है।

५ इस प्रकार वर्णाश्रमकी खोज हिन्दू-धर्ममे हुई है सही, पर इसके पीछे जो सिद्धात है वह हिन्दुओको ही लागू होता है, औरोको नही, ऐसा नही है। जगत भले ही आज उसे स्वीकार न करे। उतना वह खोयेगा। आज नहीं तो कल दुनियाको उसे स्वीकार करना ही होगा।

६ पर वर्ण और आश्रम दोनोंका आज तो लोप ही हो गया है। आश्रमका नाम और कर्म दोनोसे हो गया है। वर्णका लोप नामसे भले ही न माना जाय, तो भी कर्मसे तो हुआ ही है।

हम दोनोंपर क्रमश: विचार करेंगे।

२

वर्णधर्म

१ वर्णका अर्थ है धंधा, पेशा। वर्ण धर्मका सिद्धांत संक्षेपमें इस रूपमें रखा जा सकता है। जो मनुष्य जिस कुटुम्बमें पैदा हो उसका धंधा, अगर वह नीति-विरुद्ध न हो तो, धर्म-भावनासे करे, और ऐसा करते हुए जो अर्थप्राप्ति हो उसमें से सामान्य आजीविका भरको ही रख कर बाकीको लोककल्याणमें लगाये।

२ वर्ण धर्म है, अधिकार नहीं। उसका अर्थ यह है कि हरएक वर्णको चाहिए कि अपने-अपने कर्मको धर्म समझकर करे। उदर-पोषण उसका यत्किंचित फल है। वह मिले या न मिले समझदारको अपने धर्ममें रत रहना ही चाहिए।

३ इसके सिवा उसका अर्थ यह भी है कि वर्ण-वर्णके बीच ऊंच-नीच का भेद न हो बल्कि सभी वर्ण समान माने जायें।

४ वर्णका निर्णय सामान्यत: जन्मसे किया जाता है, किसी हदतक कर्मसे भी किया जाता है। सामान्यत: मनुष्यको अपना पैतृक धंधा करनेकी कला विरासत में मिलती है। यह नियम सर्वव्यापक है, और जाने-अनजाने सभी उसका अल्पाधिक पालन करते हैं। हिंदू पूर्वजोंने कठिन तपश्चर्यासे इस महान नियमकी खोज की और यथाशक्ति उसका पालन किया। जगत अगर इस धर्म अथवा नियमका अनुसरण करे तो सर्वत्र संतोष फैल जाय, अनुचित प्रतिस्पर्धा मिट जाय, ईर्ष्या दूर हो जाए, कोई भूखों न मरे, जन्म-मरणका पलड़ा बराबर रहे और व्याधियां दूर रहें।

५ इस धर्म-व्यवस्थामें ब्राह्मण ब्रह्मको पहचानने और पहचनवाने में समय बिताये और यह माने कि उसकी आजीविका उसे भगवान देते हैं। क्षत्रिय प्रजापालन-धर्मका पालन करे और इसके लिए आजीविकार्थ मर्यादित द्रव्य ले। वैश्य प्रजाके कल्याणके लिए खेती, गोपालन या व्यापार करे, जो अर्थलाभ हो उसमेंसे आजीविकाभरको लेकर बाकीका लोककल्याणमें उपयोग करे। इसी प्रकार शूद्र परिचर्या करे और उसे धर्म समझकर ही करे।

६. और फिर इस व्यवस्थामें जिसके पास जो संपत्ति होगी उसका वह सारी जनताके हितार्थ रखवाला या संरक्षक होगा; अपने आपको कभी उसका मालिक न मानेगा। राजा अपने महलका या प्रजासे गृहीत करका मालिक नहीं बल्कि रखवाला है। अपना पेट भरनेभरको लेकर बाकीका उपयोग प्रजाके हितार्थ करने को वह बंधा हुआ है। यानी अपनी कार्यदक्षतासे उसमें वृद्धि करके प्रजाको वह किसी-न-किसी रूपमें वापस कर देगा। यही बात वैश्य के लिए है।

७ शूद्रका तो कहना ही क्या। उसके पास कोई मिल्कियत तो कभी होनेवाली ही नहीं। अत जो शूद्र केवल धर्म समझकर परिचर्या ही करता है और जिसे मालिक होनेका लोभतक नही है वह हजार-हजार वदनाके योग्य है और सर्वोपरि है।

८ पर, इस शूद्र-धर्मकी स्तुति तभी शोभा देती है जब ये तीन वर्ण अपने-आपको जनताका सेवक समझते हो, और उनके पास जो सपत्ति है, अपनेको सार्वजनिक उपयोग के लिए उसकी रखवाली करनेवाला साबित करते हों। यह धर्म किसीपर लादा तो जा ही नही सकता।

९ वर्णको धर्मके रूपमें सामने रखकर उसके शोधकने यह सूचित किया है कि उसके पालनमें बलात्कारकी गधतक न होनी चाहिए। उसके पालनसे ही जगत टिक सकता है, उसके पालनमें जगत का निस्तार है, यह समझकर हर एक को अपने-अपने वर्णधर्मका पालन करते करते मर मिटना है, दूसरोसे जबर्दस्ती उसका पालन नही कराना है।

१० समझदारके लिए इस धर्मका पालन सरल है।

११ इस प्रकारका वर्णधर्म समताका धर्म है, केवल साम्यवाद नहीं। जगतमें विषमता फैली हुई है उसकी जगह समताका साम्राज्य हो जाय। सब धंधे प्रतिष्ठा और मूल्यमें समान माने जायें। राजा और राजाके मंत्रीसे लगाकर भंगीतक सब बराबर कमायें। तीन वर्ण अधिक-कमायें और शूद्र कम कमायें, अथवा क्षत्रिय महलमें विराजें और ब्राह्मण भिक्षुक होनके कारण झोंपड़ीमें रहें, वैश्य बड़ी-बड़ी हवेलियां खड़ी करें और शूद्र बिना घरबारका गुलाम [illegible] रहे, ऐसी दयनीय दशा जहां वर्ण-धर्मका पालन होता हो वहां हो ही नहीं [illegible]ती, न होनी चाहिए।

१२. इस प्रकारके वर्णधर्मका आज लोप हो गया है। कितने ही लोग अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बताते है सही, पर अपनेको शूद्र कहते हुए सभी लजाते हैं। इस प्रकार वास्तवमें वर्ण नामको रह गया है। फिर भी व्यवहारमें यदि हम 'वर्ण' संज्ञा रख सकते हों तो हम सब शूद्र ही कहे जायेंगे। और सच पूछिये तो हम अपने आपको शूद्र भी नही कह सकते, क्योंकि शूद्रवर्ण भी धर्म है, अर्थात् स्वेच्छासे स्वीकार करनेकी वस्तु है, और उसमें लज्जाको स्थान नही हो सकता। ऐसा तो है नहीं, इसलिए केवल कालके वश होकर हम शूद्रता अर्थात् दासत्वको प्राप्त हुए है।

१३ अगर कहा जाय कि जो मनुष्य जिस वर्णका कर्म करता है उसे उस वर्णका माने तो वर्णोंके करनेके काम तो होते ही रहते है, अत वर्णधर्मका लोप नही हुआ, तो यह कहना ठीक नही है। क्योंकि जहा कर्मका मिश्रण होता हो, जहा सब स्वेच्छासे अपनेको जो रुचे वह कर्म करते हो वहा वर्णधर्मका पालन नही बल्कि वर्णका सकर ही है।

१४ वर्णमे ऊच-नीचके भावकी गुजाइश ही नही है। पर दीर्घ कालसे हिंदू-धर्ममें धर्मके नामपर ऊच-नीचका भेद पैठा हुआ है। वह वर्णधर्मका वक्र रूप है, विकराल रूप है। जगतमे आज फैले हुए कलहका मुख्य कारण ऊच-नीचका भेद ही है। इस युद्धका निवारण वर्णधर्मके पालन से हो सकता है।

१५ पर जहा तीन वर्ण अपनेको ऊचा मानकर शूद्रको नीचा मानते हो, वहा शूद्र उनकी ईर्ष्या करे और जो सम्पत्ति तीन वर्ण लेकर बैठ गये हो उसमे हिस्सा बटाने की इच्छा रक्खे तो इसमें कोई अचरजकी बात नही है, दु खकी बात भी नही है।

१६ आज वर्णधर्मका पालन रोटी-बेटी-व्यवहारकी मर्यादामें समा गया है। इन व्यवहारोमें मर्यादाकी यानी खाद्याखाद्य-विवेककी, और बेटा-बेटीके लेन-देनमें नियमकी आवश्यकता अवश्य है। पर वर्णधर्म इन दोनोपर अवलबित नही है और उन्हें वर्णधर्मके साथ जोड देनेसे हिंदू-धर्मको बहुत नुकसान पहुचा है।

१७ वर्ण और आजकी जातियोंके बीच जमीन-आसमानका अतर है। आजकी जातियां और उपजातियां लुप्त हुई वर्णव्यवस्थाके खडहरोंके समान हैं। उनके

मूलमें वर्णभेद सरीखा कोई व्यापक नियम नहीं है, बल्कि वे आकस्मिक कारणों और रूढ़िसे उत्पन्न हुई प्रथा है। यह वर्ण-व्यवस्था नहीं है, बल्कि जातिबंधन है। इसमें हिंदूजातिकी हानि है, इसलिये इसका नाश होना चाहिए।

१८ शास्त्रोंमें वर्ण चार बताये गये है। पर चार ही होने चाहिए, यह वर्ण-धर्मका कोई अनिवार्य अंग नहीं है। वर्णधर्मके पुनरुद्धारका विचार करने बैठें तो शायद वर्ण चारसे अधिक या कम करनेकी जरूरत मालूम हो।

३
आश्रम

१ आश्रम-व्यवस्था भी प्रकृतिके नियमोको व्यवस्थित रूपसे अमलमे लानेके प्रयत्नमेंसे उपजी है।

२ सब वर्णके लोगोको सब आश्रमोका अधिकार है।

३ चारो आश्रम एक-दूसरेके साथ ऐसे जुडे हुए हैं कि एकके बिना दूसरेका पालन हो ही नही सकता।

४ ब्रह्मचर्याश्रममें मनुष्य जन्मसे ही होता है। इस कारण इसी आश्रमको बिल्कुल अनिवार्य कह सकते है। इस आश्रमको कभी न छोडने अर्थात् यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेका जो चाहे उसे अधिकार है। कम-से-कम पुरुषको २५ वर्ष तक और स्त्रीको १८ वर्षतक इस आश्रमका पवित्रतापूर्वक पालन करना चाहिए।

५ दूसरे सब आश्रमोकी उज्ज्वलताका आधार इस आश्रममें रक्खे हुए पवित्र और सयममय जीवनपर है। अत आध्यात्मिक दृष्टिसे पहला आश्रम ही मुख्य आश्रम है। इस आश्रमके लोपसे हिंदूधर्म और समाजकी अत्यन्त हानि हुई है। इस आश्रमको तेजस्वी बनाना प्रत्येक हिंदूका कर्त्तव्य है। पर इस आश्रमका आज शायद ही कोई पालन करता है।

६. गृहस्थाश्रमके विवाह-धर्मका विचार दूसरे प्रकरण में किया जायगा। धर्म-मार्गसे राष्ट्रकी सम्पत्ति बढ़ानेका विशेष भार इस आश्रमपर है।

७ गृहस्थाश्रम भोग-विलासके लिए है, यह धारणा भ्रमपूर्ण है। हिंदूधर्मकी

सारी व्यवस्था ही संयमके पोषणके लिए है। अतः भोग-विलास हिंदूधर्ममें कभी अनिवार्य नहीं हो सकता। गृहस्थाश्रममें भी सादगी और संयम दूषण नहीं बल्कि भूषण ही हैं।

परन्तु संयमके आदर्शका पोषण करते हुए भी कितने ही मनुष्य भोगोंके प्रति होनेवाले आकर्षणको नही रोक सकते। गृहस्थाश्रमके धर्म इन भोगोंकी मर्यादा और सेवनकी विधि नियत कर देते हैं।

८ फिर भी आज जिसका सब लोग पालन करते हैं वह गृहस्थ-'वृत्ति' अर्थात् प्रजावृद्धिका कर्म है, गृहस्थ 'धर्म' नही है। इसके द्वारा अधिकांशमें स्वेच्छाचार और व्यभिचारका पोषण होता है।

९ व्यभिचारी या स्वेच्छाचारी जीवनके अंतमें वानप्रस्थ या सन्यासको असभव समझना चाहिये।

१० भोगोको घटाते-घटाते फिर इसके प्रति मोहको छोडने की शक्ति प्राप्त होने पर गृहस्थदम्पति ब्रह्मचर्यके व्रतोको धारण करके अथवा उन्हें फिर सतेज करके वानप्रस्थ बनते है। जिसने अपने राग-द्वेषपर पूरी विजय नही पाई है, पर इंद्रियोको रोक सकता है और रोककर बैठा है, उसे वानप्रस्थ कह सकते हैं। इस आश्रमको आज लुप्त समझना चाहिए।

११ जिसने राग-द्वेष को पूरा-पूरा जीत लिया है; जो काया, वाणी और मन तीनो से सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्यादि धर्मों का पालन करता है, वह सन्यासी हो गया यह कह सकते हैं। ऐसा सन्यासी निष्कामभाव से सेवाकार्य करते हुए भी अपने निर्वाह का आधार भिक्षापर रखता है।

१२ आश्रमोका बाहरी भेससे सबध नही है।

४

स्त्रीजाति

१ स्त्रीजातिके प्रति रक्खा गया तुच्छ भाव हिंदू समाजमें घुसी हुई सड़न है, धर्मका अग नहीं है। धार्मिक पुरुष भी इस प्रकारके तिरस्कार-भावसे मुक्त नहीं हैं, यह बात बतलाती है कि यह सड़न कितनी गहराई तक पहुंच गई है।

२. स्त्री और पुरुषमें प्रकृतिगत भेद है। इससे, दैनिक जीवनमें उनके कर्त्तव्योमें भी भेद होता है। फिर भी दोनोंमें कोई ऊचा या नीचा नहीं है, बल्कि ये दोनों समाजके समान महत्वके और प्रतिष्ठापात्र अग हैं।

३ पुरुष स्त्रीजातिको एक ओरसे दबाता है, बराबर वशमें रखता है, उसकी अवगणना और निंदा करता है, दूसरी ओरसे उसे अपनी भोगवासनाको तृप्त करनेका साधन मात्र मानता है, और इस हेतुसे उसे पुतलीकी भांति अपनी इच्छाके अनुसार सजाता तथा उसकी खुशामद करता है और इस तरह उसकी भोगवृत्तिको उत्तेजित करनेका प्रयत्न करता है। इन दोनों प्रकारोंसे केवल स्त्री-जातिका ही नही, पुरुषका अपना भी और सारे समाजका भारी अध पतन हुआ है।

४ पालन-पोषण और शिक्षणमें लड़के और लडकीमें भेद करनेवाले और लडकीके प्रति कम कर्तव्य-बुद्धि रखनेवाले माता-पिता पाप करते है।

५ वय प्राप्त पुरुष जितनी स्वतत्रताका अधिकारी है, उतनी ही स्वतत्रता की अधिकारिणी स्त्री भी है।

६ स्त्री अबला नही है बल्कि अपनी शक्तिको पहचाने तो पुरुषसे भी अधिक सबला है। वह माता रूपमें जिस रीतिसे बालकको गढती है और पत्नी होकर जिस प्रकार पतिको चलाती है, बहुत करके पुरुष वैसे ही बनते है।

७ स्त्री-जातिमें छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वत्ता अथवा शरीर-बलकी बदौलत नही है, इसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रद्धा, भावनाका वेग और अत्यन्त त्यागशक्ति है। वह स्वभावसे ही कोमल और धार्मिक वृत्तिवाली होती है, और पुरुष जहा श्रद्धा खोकर ढीला पड जाता है, अथवा झूठे हिसाब लगानेमें उलझा रहता है, वहां वह धीरज रखकर सीधे रास्तेपर स्थिर भावसे बढ़ती है।

८ जगतमें धर्मकी रक्षा मुख्यत स्त्रीजातिकी बदौलत हुई है।

९ स्त्रीजाति अपना बल और कार्य-क्षेत्रकी दिशा ठीक-ठीक समझ ले तो वह कभी अपने आपको पुरुषकी दबैल न मानेगी, और पुरुषका तथा उसकी प्रवृत्तिका अनुकरण करनेका ही आदर्श अपने सामने न रखेगी। वह पुरुषको रिझाने अथवा

आकृष्ट करनेके लिए अपने शरीरको न सजायेंगी, किंतु अपने हृदयके गुणोंसे ही सुशोभित होने का यत्न करेंगी।

१० स्त्रीजातिको सार्वजनिक कार्योंमें पुरुषके बराबर ही हाथ बटाना चाहिए। मद्यपान-निषेध, पतित स्त्रियोंके उद्धार, इत्यादि कितने ही काम ऐसे हैं जिन्हें स्त्री ही अधिक सफलतापूर्वक कर सकती हैं।

११ स्त्रियोंको विवाह करना ही चाहिए, यह धारणा भ्रम है। उसे भी यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालनेका अधिकार है।

१२ स्त्री अपनी इच्छाके विरुद्ध पतिकी कामवासना तृप्त करनेको मजबूर नही है। ऐसा करनेवाला पति व्यभिचारके समान ही दोष करता है।

५

अस्पृश्यता

१ अस्पृश्यता हिंदू धर्मका अग नही है बल्कि उसमें घुसी हुई सडन है, वहम है, पाप है और उसको दूर करना हरएक हिंदूका धर्म है, उसका परम कर्त्तव्य है।

२. अस्पृश्य माने जानेवाले लोग चार वर्णके ही अग हैं।

३ जन्मके कारण मानी गई इस अस्पृश्यतामे अहिंसाधर्म और सर्व-भूतात्म-भावका निषेध हो जाता है। इसकी जडमें सयम नही है, उच्चताकी उद्धत भावना ही वहा बैठी हुई है। इसलिए यह स्पष्टत अधर्म ही है। इसने धर्मके बहाने लाखो, करोडोकी हालत गुलामोकी-सी कर डाली है।

४ सार्वजनिक मेले, बाजार, दूकानें, मदरसे, धर्मशालाए, मदिर, कुए, रेल, मोटरें इत्यादिमें, जहा कही दूसरे हिंदुओको आजादीसे जाने और उनसे लाभ उठाने का अधिकार हो वहा अस्पृश्योको भी अवश्य अधिकार है। इस अधिकारसे उन्हें वचित रखनेवाला अन्याय करता है। इस अधिकारको स्वीकार करनेवाले उनपर मेहरबानी नही करते बल्कि अपनी ही भूलको सुधारते है।

५ सैकडों वर्षोंके अमानुष व्यवहार और सस्कारवान वर्णोंके ससर्गसे वचित रहने के फलस्वरूप अस्पृश्योकी स्थिति इतनी अधिक दयनीय हो गई है, और वे इतने

अधिक नीचे गिर गये हैं कि उन्हे दूसरे वर्णोंकी कोटि में चढ़ानेके लिए संस्कारवान हिंदुओंके विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है । इसलिए अस्पृश्य तथा दूसरी दलित या पिछडी हुई जातियोंकी सेवामे अपना जीवन अर्पण करना और इस कार्यमें उदार हृदयसे सहायता करना इस युगके सस्कार वाले हिंदुओंका अति पवित्र कर्तव्य है ।

६ इस दृष्टि से दलित जातियोके लिए विशेष सस्थाओं और सुविधाओं की जरूरत है । पर विशेष सस्थाओ और सुविधाओकी व्यवस्था कर देनेसे उनका सार्वजनिक सस्थाओ और सुविधाओंसे लाभ उठानेका अधिकार चला नही जाता ।

७ अछूतोंकी स्थिति सुधारनेके लिए यह जरूरी नही है कि उनसे उनके परम्परागत पेशे छुडवाये जायें अथवा उन पेशोके प्रति उनके मनमें अरुचि पैदा की जाय । ऐसा नतीजा पैदा करनेके लिए की गई कोशिश उनकी सेवा नही, असेवा होगी । बुनकर बुनता रहे, चमार चमडा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यताका निवारण हुआ ।

८ भगी समाजकी गदगीको दूर करके उसे रोज-रोज साफ-सुथरा रखनेका पवित्र कार्य करता है । यह कार्य नियमित रूपसे न हो तो सारा समाज मरनेकी दशाको पहुच जाय । यह कहना यथार्थ नही है कि वे अपने पेशेकी बदौलत सस्कार-हीन तथा निर्बल दशाको प्राप्त हुए हैं । इन पेशोको दूसरे पेशोंके बराबर ही समझना चाहिए । दूसरे पेशोकी तरह इस पेशेमें भी अनेक सुधारोंकी गुजाइश है, पर यह बिल्कुल भिन्न प्रश्न है । सस्कारवान हिंदू इसको खुद कर दिखाकर उसमें बहुत सुधार कर सकते है । -

९ अछूतोंमें घुसी हुई मुरदार मांस खानेकी प्रथा ही बतलाती है कि उनकी दरिद्रता कितनी करुणाजनक है । इस दरिद्रताके दूर होने और उन्हें समझानेसे यह आदत छूट सकती है ।

१० केवल अपना आचार अच्छा रखनेसे कोई संस्कारवान नहीं बन सकता । स्वय जिसे हम गदा काम मानते हों उसे करनेको दूसरेको विवश होना पड़े, इस

प्रकार का व्यवहार संस्कारहीनताकी निशानी है। अपनेको संस्कारवान माननेवाले वर्ग अछूतोंको अपना जूठन या बासी, उतारन या अपवित्र हुई वस्तु दें, और उनके साथ पशुसे भी बुरा व्यवहार करे, यह असंस्कारिता है और साथ ही पाप भी।

६
खाद्याखाद्य-विवेक

१ मनुष्य सर्वभक्षी प्राणी नही है। उसके खाद्य पदार्थोकी सीमा अवश्य है। पर वर्ण-धर्मके साथ इसका सम्बन्ध नही है। इसमें छूत-छात दोषरूप है।

२ स्वच्छता इत्यादि के नियमोका पालन और खाद्याखाद्यके विवेककी रक्षा करते हुए सब वर्णोंके एक पंक्तिमें खानेमे कुछ भी दोष नही है। भोजन किसी खास वर्णके आदमीका ही बनाया हुआ हो यह कदापि आवश्यक नही है।

३ रोटी-व्यवहार को जो महत्व आज दिया जाता है वह छूआ-छूत का पोषक ही है। वह संयम के बदले उलटा भोगको उत्तेजन देनेवाला हो गया है।

४ इस कारण, जाति, कौम, धर्म इत्यादि भेदोकी दृष्टिसे किया गया चौका-भेद और पंक्ति-भेद धर्मका लक्षण नही है। इस भेदकी भावनासे हिंदूधर्मकी हानि हुई है।

७
विवाह

१ विवाहसे मनमाना भोग करनेकी छूट मिल जाती है यह विचार पापमय है। स्त्री-पुरुषका भोग एक ही उद्देश्यसे धर्मयुक्त हो सकता है, वह है—दोनोंकी संतानेच्छा। इस इच्छाको पूरी करनेका शुद्ध प्रकार विवाह है।

२ विवाहेच्छु युवती या युवक अपने लिए वर या वधू खुद पसंद करे, यह साधारणतः इष्ट नही है। इसमें मानसिक व्यभिचारके बारबार और कभी-कभी शारीरिक व्यभिचारके भी अवसर उपस्थित होते हैं। इसके सिवा, कम अनुभववाली युवावस्था तथा भोगेच्छाके आवेगमें जो चुनाव होता है उसके बुद्धिमत्तापूर्वक होनेकी संभावना बहुत कम रहती है।

३ इसलिए विवाहेच्छुको चाहिए कि वह अपनी इच्छा तथा विवाहके विषय-में उसने कोई शर्तें या निश्चय कर रक्खे हो (जैसे विधवाके साथ, जातिके बाहर, पैसेके लेन-देनेके बिना, विवाह करना, इत्यादि) तो उन्हें अपने बडो या बडो-जैसे मित्रो को बता दे, और उनका ध्यान रखते हुए अपने लिए योग्य वर या वधू तलाश कर देनेकी उनसे प्रार्थना करे।

४ बडे लोग युवती या युवकके स्वभाव, गुण-दोष तथा विचारोंको ध्यानमें रखकर उनके अनुरूप जोडा ढूंढ देने का प्रयत्न करे। दोनोको एक-दूसरेके गुण-दोषसे परिचित करादें, दोनोके जीवनमें कोई अवश्य जानने योग्य बात हुई तो उसे स्पष्ट कर दें। चुनावमें जो बात विशेष महत्वकी हो सकती हो वह छिपाई न जाय।

५ सब बाते बताने के बाद अगर युवक-युवती को परस्पर मिलकर परिचय अथवा बातचीत करने की जरूरत मालूम हो तो उन्हें मर्यादापूर्वक ऐसा करनेका सुभीता बडोको कर देना चाहिए।

६ इसके फलस्वरूप दोनो एक-दूसरेको स्वीकार करनेका निश्चय करें तो उनका सम्बन्ध कर दिया जाय। दोनोमेंसे एक भी अनिश्चित हो या रजामद न हो तबतक सम्बन्ध न किया जाय। उस दशामें बडोको दूसरा स्थान ढूढना चाहिए।

७ सम्बन्ध होनेके बाद और विवाहके पहले स्पर्शकी उचित मर्यादामें रहकर और ब्रह्मचर्य-पालनका आग्रह रखते हुए दोनो एक-दूसरेके साथ पत्र-व्यवहार रखें या मिले-जुले तो इसमें दोष नही है। सयमी स्त्री-पुरुष इस अवधिमें भी अपने भावी वर या वधूसे भोगकी बातें या कल्पनाए न करके एक दूसरे का उत्कर्ष साधने वाली बाते और कल्पनाए करेगे।

८ ब्याहके बाद भी वे मानेंगे कि विवाह एक धर्म है। धर्ममें मर्यादा, विवेक आदि होते हैं। अत मर्यादा और विवेकपूर्वक रहनेवाले दम्पती गृहस्थधर्म का पालन करते हैं, जो मर्यादारहित होकर आचरण करते हैं वे धर्मनिष्ठ नहीं, स्वेच्छा-चारी है।

९ सतानकी इच्छाके बिना विवाह-संबंध नहीं होना चाहिए। पर विवाह

करलेनेके बाद दोनों संयमका जीवन बिताना चाहें तो विवाहको व्यर्थ समझनेकी जरूरत नहीं है। समाजमें अनेक आवश्यक कार्य स्त्री-पुरुष दोनोंको मिलकर करने के होते हैं। उन कर्मोंमें दोनो एक-दूसरेके धर्म-सहचारी बनकर अपने निकट संबंध का उपयोग सेवाके निमित्त करें।

१० संतानोत्पादन की इच्छा न हो, अथवा दोनोमेंसे एकमें भी संतान उत्पन्न करनेकी योग्यता या शक्ति न हो, या दोनोकी रजामंदी न हो, फिर भी अगर पति-पत्नी भोग करते हैं तो उसे पाप समझना चाहिए।

८

संतति नियमन

१ बिना विचारे संतान बढाते जाना या संतानकी इच्छा करते रहना जडताका लक्षण है।

२ आज संततिकी बिना विचारे होनेवाली वृद्धिको रोकनेकी आवश्यकता है उसका धर्मयुक्त मार्ग एक ही है—और वह ब्रह्मचर्य है।

३ संतति-नियमनके कृत्रिम उपाय धर्म तथा नीतिके विरुद्ध और परिणाम में विनाशकी ओर लेजानेवाले है। इससे समाजका सब प्रकार अध पात होता है।

९

पति-पत्नीमें ब्रह्मचर्य

१ विवाहित स्त्री-पुरुष को ऋतुकालमें भोग करना ही चाहिए, यह खयाल भूल से भरा हुआ है। यह धारणा भी गलत है कि दोमेंसे एककी इच्छा न हो तो भी उसे दूसरेकी भोगेच्छा तृप्त करनी ही चाहिए।

२ इसलिए दोमेंसे एककी विषयेच्छा इतनी मंद पड जाय कि वह अपने शरीर को काबूमें रख सके तो उसे ब्रह्मचर्यव्रत लेनेका अधिकार है। ऐसा करते समय वह अपने साथीका सहयोग तो चाहेगा, पर उसकी सम्मति को आवश्यक नहीं मानेगा।

३ पति असमत हो तो स्त्रीके ऐसे निर्णयसे उसकी स्थितिके कठिन हो जाने की संभावना अवश्य है। जिसे अपना धर्म स्पष्ट हो गया है वह स्त्री सत्याग्रहके

सबसे इस कठिनाईको सहन करले और जो दुःख पड़े उसे बर्दाश्त कर ले।

४. पतिके ऐसा निश्चय करने पर भी तीव्र भोगेच्छा रखनेवाली स्त्रीकी स्थिति कठिन हो जाती है, क्योंकि दोनों स्थितियोंमें कानून और लोकमत पत्नीके प्रतिकूल है। पर जो पति इस प्रकार धर्म-भावसे ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार करेगा वह अपनी पत्नीका रास्ता सुगम कर देगा। वह ऐसे योग्य पुरुषकी तलाशमें उसकी सहायता करेगा जो कानूनकी परवा न करके अपनेको उस स्त्रीके साथ धर्म-विवाहसे ही बंधा हुआ मानेगा और समाज तथा कानूनकी ओरसे जो कठिनाइयां पैदा की जायेंगी उन्हें सहन कर लेगा। इस प्रकार कानूनमें सुधार करनेका रास्ता भी वह आसान कर देगा। ऐसा पति जबतक न मिले तबतक उसे आदरपूर्वक रक्खेगा।

१०

विधवा-विवाह

१ हिन्दू-विधवा त्याग और पवित्रताकी मूर्ति है। वह माताकी भांति सबके लिये पूज्य है। उसे अशुभ समझनेवाला हिन्दू-समाज महान अपराध करता है। शुभ कार्योंमें उसकी उपस्थिति और आशीर्वाद पानेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। पवित्र विधवाको समाजका भूषण समझकर उसके मान और प्रतिष्ठाकी रक्षा करनी चाहिए।

२ किन्तु स्त्री-जातीके प्रति पोषित-प्रचारित तुच्छ भावने विधवाके साथ अन्याय करनेमें कोई कसर उठा नहीं रक्खी। इससे हिन्दू विधवाकी स्थिति अछूतोंके समान ही दयाजनक हो गई है।

३ विधवा त्यागकी मूर्ति है, पर इस कारण वैधव्य जबरदस्ती पालन कराने की चीज नहीं है। बलात्कारसे कराया हुआ त्याग उसमें रहनेवाली दिव्यताका नाश करता है। और उसे पूजनीय तथा आदर्श बनानेके बदले दयाका पात्र बना डालता है।

४ इस कारण विधुर हुये पुरुषको पुनर्विवाह करनेका जितना अधिकार माना गया है उतना ही विधवाको भी है।

५ बालविधवा बालविवाह का परिणाम है। १५-१६ की उम्र से पहले कन्याका विवाह होना ही न चाहिए। ऐसे विवाहके फलस्वरूप प्राप्त वैधव्य तो वैधव्य ही नहीं है। ऐसी विधवाको कुवारी कन्याके समान मानकर मां-बापको उसके ब्याहकी उतनी ही चिंता करनी चाहिए जितनी वे कुवारी बेटीके ब्याहकी करते हैं और उसे ब्याह देना चाहिए।

६ विवाहेच्छु हिंदू युवकोंसे ऐसी बालविधवाओंसे ही ब्याह करनेका आग्रह रखनेकी सिफारिश करना उचित होगा। यदि युवक विधुर फिरसे विवाह करना चाहे तो उसे विधवासे ही विवाह करना धर्म समझना चाहिए।

११

वर्णान्तर-विवाह

१ बेटी-व्यवहारके विषय में संयम, सुख और वर्ण (अर्थात् पेशेकी वरासत) की रक्षाकी दृष्टिसे अपने ही वर्णमे विवाह करनेकी मर्यादा साधारणत इष्ट है। पर आज तो वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। इस दशामे स्वधर्मियोके बीच गुण-कर्मको ध्यानमें रखकर विवाह सम्बन्ध करना उचित है। ऐसा वर्णान्तर-विवाह निर्दोष है।

२ परदेशी या परधर्मी के साथ विवाह करनेमे धर्मका प्रतिबन्ध नही है। पर उसमें अनेक विघ्न आनेकी सभावना होनेसे ऐसे सम्बन्ध अपवादरूप ही शोभा देते हैं और उसमें भी हेतु पारमार्थिक होना चाहिए।

खण्ड ४ : : सत्याग्रह

१

सत्याग्रहीका कर्त्तव्य

१ दूसरे खंडमें सत्याग्रहसबन्धी जो साधारण प्रकरण (तीसरा) है उसे पाठक इसके पहिले फिर से देख जायें।

२ व्यक्ति और समाजका संबध इस प्रकारका है कि जिस समाजसे व्यक्तिका उद्भव होता है उस समाज की कुल मिलाकर धर्ममें जितनी प्रगति हुई हो उससे व्यक्तिकी प्रगति बहुत आगे नही बढ सकती । भूतकालके किसी महापुरुषकी तुलनामें आजका महापुरुष धर्म-विचार या धर्म-साधनके किसी विषयमें आगे बढ जाये तो इसका कारण बहुत-कुछ यही हो सकता है कि उस महापुरुषके समयके समाजकी अपेक्षा आजका समाज उस तरहसे धर्म-विचार और धर्मसाधनामें आगे बढा हुआ है। हम आशा रख सकते हैं कि इस तरह मानव-समाज में उत्तरोत्तर धर्मकी शुद्धि होती रहेगी ।

३ अत यह सभव नही है कि अपने आसपास जो स्पष्ट अधर्म चल रहा हो उसकी ओरसे अपनी आंखें बन्द रखकर कोई आदमी अपनी बहुत अधिक आध्यात्मिक उन्नति कर ले ।

४ इस प्रकार व्यक्तिको केवल अपनेमें ही सत्य-अहिंसादिक धर्मों की सिद्धि करनी हो तो भी समाजमें प्रचलित अधर्मका विरोध करना उसका कर्त्तव्य होता है ।

५ जिस अशतक अपने अन्दर सत्यादि गुणोंका उत्कर्ष हुआ होगा उस हदतक उसका विरोध करना उसे अपना फर्ज जान पड़ेगा और उसमें वह अपनी शक्ति लगायेगा ।

२

सत्याग्रहीकी मर्यादा

१ सत्याग्रहका तत्व अभी पूर्ण विकसित शास्त्र नही बन पाया है। इसका प्रयोग अभी बाल्य अवस्थामें है, और इसका प्रयोग करने तथा इसकी शक्तिकी शोध करने और उसे आजमानेवाला कोई पूर्ण शास्त्री अभी दिखाई नही देता।

२ इसलिए इसमें सब प्रकारके अधर्मों, अन्यायो, कलहो आदिके निवारणका कोई तुरत बरतनेलायक नुस्खा मिलनेकी आशा कोई न रखे। सत्य और अहिंसामें ये शक्तिया आवश्यक है, यह श्रद्धा रखकर सत्याग्रही उनकी खोजमें प्रयत्नशील रहे।

३ इस बीच अनेक प्रकारके अधर्मों, अन्यायो, कलहों आदिके निवारणमें इसकी असमर्थता देखकर न निराश हो, न निष्क्रिय बने।

४ अधर्मोंको दूर करनेके लिए जो यह सत्याग्रहका मार्ग नही ढूढ सकता वह हिंसात्मक उपायोकी योजना करता रहेगा। सत्याग्रही उन उपायोका केवल निषेध करे, या अपना शारीरिक अथवा आर्थिक सहयोग न देकर तटस्थ रहे तो इतने से उस हिंसाके लिए उसका नैतिक उत्तरदायित्व कम नही हो जाता। वह तभी उस जिम्मेदारीसे मुक्त समझा जा सकता है जब वह अपनी अहिंसात्मक योजना पेश करे और उसे सिद्ध कर दिखाये।

५ इसका यह अर्थ नही है कि सत्याग्रही का केवल निषेध करना या तटस्थ रहना हमेशा ही गलत समझा जायगा। कभी-कभी इतना और यही कर्त्तव्य हो सकता है।

६ पर ऐसे अवसर आ सकते है जब सत्याग्रहीको हिंसामें कमोबेश सक्रिय भाग भी लेना पड़े। उदाहरणके लिए, अपराधी को सजा दिलाना, लड़ाई छिड़ने पर अपने राज्यकी सहायता करना, आदि। जिस राज्यमें वह रहता है और जिससे रक्षण प्राप्त करता है उस राज्यको यदि वह अहिंसाका मार्ग नही दिखा सकता तो हिंसाका महज विरोध करने या असहयोग करनेसे वह उस हिंसाकी जिम्मेदारीसे बच नहीं सकता।

७ पर ऐसी मदद करते हुए भी वह अपनी सहायताकी रीतिमें अपने अन्दर विद्यमान सारी सत्यनिष्ठा और अहिंसा-वृत्तिका परिचय दे और अहिंसात्मक मार्ग ढूंढनेका प्रयत्न करे ।

३

सत्याग्रहका बुनियादी सिद्धांत

१ मनुष्य चाहे कितना ही स्वार्थान्ध हो जाय, और कितने ही घातक या कुटिल उपायोंसे काम लेने को तैयार क्यों न हो गया हो, फिर भी उसके अंतस्तलमें, सत्य ही सर्वोपरि है यह प्रतीति और इसलिए उसके प्रति आदर और भय बना ही रहता है । मनुष्यमात्रके हृदयमें स्थित सत्य-विषयक यह गुप्त निश्चय, आदर और भय, यही सत्याग्रह-शास्त्र की बुनियाद है । इसीको मनुष्यके हृदयमें रहनेवाली 'अंत करणकी आवाज' कह सकते हैं ।

२ स्वार्थके वशीभूत मनुष्य अंत करणकी इस आवाजकी ओर दुर्लक्ष्य करने अथवा उसे दबा देने का कुछ समय तक प्रयत्न करता है । पर उसका विरोधी अगर सच्चा सत्याग्रही साबित हो तो अंतमें वह आवाज उसे सुननी ही होगी ।

३ यह आवाज अनेक रूपोंमें उसके सामने प्रकट होती है । उसे अपने अन्यायका निश्चय हो जाना और उसके लिए पश्चात्ताप होना इसका श्रेष्ठ प्रकार है । इसीको 'हृदय परिवर्तन' या दिल बदलना कहते हैं ।

४ पर इससे कम तीव्रतासे भी यह आवाज उठ सकती है, जैसे लोक-लज्जाके रूपमें अथवा सर्वनाशके भयके रूपमें ।

५ जब सत्याग्रहीका विरोधी कोई व्यक्ति-विशेष नहीं बल्कि एक राष्ट्र, जाति या व्यवस्था होती है तब ऐसा अंतर्नाद उसके किसी विशेष चरित्रवान व्यक्तिको पहले सुनाई पड़ता है और उसका हृदय-परिवर्तन पहले होता है । वह व्यक्ति फिर अपने भाईयोंको वह आवाज सुनाता है और सत्यका पक्ष लेकर उनका विरोध भी करता है ।

६ विरोधीके हृदयको 'अंत करणकी आवाज' के प्रति जाग्रत करना

प्रत्येक सत्याग्रहका साध्य है । अन्यायको दूर करने के लिए विरोधीको जो-जो कदम उठाने चाहिए वे पीछे साध्यमेंसे फल रूपमें अपने-आप पैदा होते जाते हैं ।

४

सत्याग्रहके सामान्य लक्षण

१ सत्य, अहिंसादि साधनो द्वारा ही अधर्मका विरोध किया जा सकता है, यह सामान्य नियम सर्वत्र लागू होता है ।

२ अधर्मके नाशका धर्मयुक्त उपाय होना ही चाहिए, इस श्रद्धासे उत्कट रूपसे विचार करनेवाले सत्याग्रहीको विरोध करने की पद्धति मिल ही जाती है ।

३ सत्याग्रह ऐसा उपाय है जिसमे सत्याग्रहीके ही कष्ट उठानेकी बात रहती है, विरोधी पक्षको कष्ट देनेका हेतु होता ही नही । इसलिए सत्याग्रही भूल करे तो उसके लिये उसीको आवश्यकतासे अधिक कष्ट सहना पडता है ।

४ पर इस कारण सत्याग्रहके फलस्वरूप विरोधीके साथ कटुता बढ़ती नही बल्कि घटती है, और सत्याग्रहके अतमे दोनो पक्ष मित्र बन जाते है ।

५ अधर्मका विरोध करनेके लिए सत्याग्रहकी उचित रीति जबतक न सूझ जाय तबतक सत्याग्रही कोई कदम उठानेकी जल्दी न करेगा, बल्कि शातिसे ईश्वरकी प्रार्थना और जनताकी दूसरी सेवाए करता रहेगा । वह यह श्रद्धा रखेगा कि ऐसा करते-करते उसे एक दिन स्पष्ट मार्ग सूझ जायगा और उस समय उसपर चलनेका बल भी उसमे आजायगा, अथवा ईश्वर ही अपनी अनेकविध शक्तियोके द्वारा उसका रास्ता निकाल देगा ।

६ सत्याग्रहका शस्त्र सघ-बल पर अवलबित नही होता । पर सघ-बल उसकी शक्ति बढा सकता है । सच्चे और गलत सत्याग्रहके बीचका भेद पहचाननेकी यह एक कुजी है । सत्याग्रहकी सूचना करनेवाला यदि अकेला पड जाय और अपनी सूचनापर अमल करनेको तैयार न हो तो कहा जा सकता है कि वह सच्चा सत्याग्रही नही है । सच्चा सत्याग्रही अपनेको स्पष्ट दिखाई देनेवाले पथपर चलनेको अकेला तैयार हो जाता है ।

७ पर इससे यह भी न समझ लेना चाहिए कि कोई अकेला सत्याग्रह करनेको तैयार हो जाता है तो वह सदा सही रास्ता ही पकडता है। फिर भी वैसी भूलका परिणाम तीसरे और चौथे पैराग्राफमें बताये अनुसार होता है।

८ सत्याग्रही झूठी प्रतिष्ठाके फेरमें नही रहता। अपनी विचार-प्रणाली या योजनामे गलती मालूम होनेपर, वह चाहे जितना आगे बढ गया हो तो भी ठहरजाने में, अथवा जो 'पीछे हटना-सा' जान पडे वैसा आचरण करने और अपनी भूल कबूल करनेमें, तथा जो हानि हो उसे सहन कर लेने या उसके लिए उचित प्रायश्चित स्वीकार करनेमे वह शर्माता नही, क्योकि, किसी भी दूसरे विचार या कारणको सत्याग्रही सत्यके सामने कम महत्वकी वस्तु समझता है। इससे उसका इष्ट कार्य बिगडता नही बल्कि बनता है, और बाद को यह साबित होता है कि उसका जाहिरा 'पीछे हटना' दरअसल 'आगे बढना' था।

५

सत्याग्रहके अवसर

नीचे दिये हुए नियमोको केवल दिशासूचक ही समझना चाहिए

१ सत्याग्रही अपने ऊपर होनेवाले वैयक्तिक अन्यायके लिए झट सत्याग्रह करने नही जायगा। ऐसे अन्यायोको वह साधारणत सह लेगा, और सहन करते-करते विरोधीको प्रेमसे जीतने की कोशिश करेगा। अपने साथ होनेवाले अन्यायकी जडमें कोई सामाजिक अहित की बात भी हो, तभी सामान्य रीतिसे सत्याग्रह द्वारा वह उसका विरोध करेगा।

२ इसी तरह व्यक्तिकी ओरसे होनेवाले अन्याय तथा समाज या सत्ताधारीकी ओरसे होनेवाले अन्याय इन दोनोमें सत्याग्रहीको भेद करनेकी आवश्यकता होती है। बलवान व्यक्ति द्वारा निर्बलका पीडन इस अपूर्ण मानव-समाजमें होता ही रहेगा। ऐसे हरएक झगडेमें सत्याग्रहीका दखल देना मुमकिन नही। वहां उसे अपनी शक्ति, मर्यादा, अन्यायके प्रकार, उसके तात्कालिक महत्व, न्याय प्राप्त करने के सर्वमान्य और कानूनी साधनो आदिका विचार करना होगा।

फिर भी, जहां स्पष्ट आवश्यकता दिखाई दे, वहां अपने प्राण देकर भी वह अन्याय को रोकनेका यत्न करेगा।

३ सामाजिक और राजनीतिक अन्यायोमें भी विवेककी आवश्यकता होती है। एक अधर्म या अन्याय ऐसा होता है जिसमे कानून अधर्मी या अन्यायी नही होता, पर उसका अमल अधर्म या अन्याय-पूर्वक होता है, और अमल करनेवाला अपने अधर्म या अन्याय को उस कानूनके नीचे ढकता है अथवा उसे अपना हथियार बनाता है। इसमें उसे न्याय या धर्मका ढोंग करना पडता है। यह भी अपूर्ण मानव-समाजमे होता ही रहेगा। मानव-समाज में ज्यो-ज्यो सद्गुणो और परस्पर स्वभावकी समष्टि रूपसे वृद्धि होगी त्यो-त्यो यह स्थिति सुधरेगी। इसमें न्याय और धर्मका जो ढोंग करना पडता है वही दंभके आचरणकर्ताकी सत्यको दी हुई श्रद्धांजलि है, यह मान कर संतोष करना पडता है। फिर भी ऐसा पाखंड सार्वत्रिक हो जाय तो उसके लिये भी सत्याग्रहका मौका और रास्ता निकल सकता है। जैसे, सर्वत्र दमन चलता हो तो अपना बचाव न करना बल्कि सजा भोग लेना, यही स्वतंत्र रूपसे, सत्याग्रहकी एक विधि हो सकती है।

४ पर, जहा अन्याय या अधर्म बिल्कुल बेहयाई से—तुम्हे जो कुछ करना हो कर लो, इस भाव से होता हो, अथवा उसीको न्याय, धर्म या कानून का नाम दिया गया हो, वहा सत्याग्रह कर्तव्यरूप हो जाता है। कारण यह कि ऐसे अधर्म और अन्यायको सहन कर लेनेवाले की सत्त्व-हानि होती है।

६

सत्याग्रहके प्रकार

१ सत्याग्रह जितनी रीतियोसे हो सकता है उन सबको गिनाया नही जा सकता। अधर्मका स्वरूप, उसकी तीव्रता, उसका आचरण करनेवाले व्यक्ति या समाजकी विशेषताएं, उसका और अपना संबंध, हमारा तथा जिसका पक्ष हमने लिया है उसके जीवनमें उस अधर्मको मिटा डालनेमें मिली हुई सिद्धि—सत्याग्रहकी पद्धति, प्रकार और मात्रा इन सब बातोपर आश्रित होती है।

२ साधारणतः यह कहा जा सकता है कि एक कुटुम्बमें रहनेवाला व्यक्ति अधर्म करनेवाले दूसरे व्यक्तियोंके साथ जिन-जिन पद्धतियोका अवलंबन कर सकता है वे सब पद्धतिया उचित रूपमें समाजमें भी बरती जा सकती हैं।

३ इस प्रकार इसमें समझाने-बुझानेसे शुरू करके उपवास, असहयोग, सविनय-अवज्ञा,उस कुटुम्ब, समाज, राज्य इत्यादिका त्याग, अपने न्याय अधिकारका शांतिके साथ उपयोग और यह सब करते हुए जो सकट आ जायें उनको सह लेना, इत्यादि अनेक प्रकार होते हैं ।

४ इनमेंसे उचित उपाय और उसकी उचित मात्राके चुनावमें विवेक अथवा तारतम्य-बुद्धिसे काम लेना चाहिए। यह अनुभवसे आनेवाली बात है, पर कुछ उपयोगी सूचनायें अगले प्रकरणोमें दी गई है।

५ परन्तु याद रहे कि सत्याग्रह ऐसी शक्ति है जिसका पूर्ण विकास अभी नही हो पाया है। जो तपस्वी मनसा-वाचा-कर्मणा, सत्य और अहिंसाका पालन करता हुआ इसकी शक्तियोकी शोधमें श्रम करेगा उसे इसके अनेक नये प्रकार मिलेंगे और उसे इसका बल अटूट जान पड़ेगा।

६ सत्याग्रहमें युद्धको रोकनेकी शक्ति अवश्य होनी चाहिए। इस शक्तिका बाह्य रूप कैसा होगा यह आज नही कहा जा सकता। पर इसका अर्थ इतना ही है कि अधिक श्रद्धा रखकर इसकी शक्तियोके शोधनमें श्रम करना चाहिए।

७

समझाना

१ विरोधीको समझाकर समाधान-भावसे काम करनेका प्रयत्न करना सत्याग्रहीका पहला लक्षण और सत्याग्रहकी पहली सीढ़ी है।

२ इस तरह समझानेका एक भी उपाय वह उठा न रखेगा। इसमें वह अपने धीरज और उदारताकी पराकाष्ठा दिखायेगा। इसके लिए बिचवई करनेवाले मित्रोकी मध्यस्थताकी वह अवगणना न करेगा, और जिनसे सिद्धांतका भंग न होता हो वैसी सभी छूटें देनेको तैयार रहेगा।

३ समझानेका प्रयत्न निष्फल न होजाने पर और खास-तौरका कदम उठानेका समय आने पर वह विरोधीको आखिरी मौका दिये बिना आगे न बढेगा।

४ आगे बढ़नेके बाद भी समझौतेके लिए वह सदा तैयार रहेगा, और ठगा जानेकी जोखिम उठाकर भी वह अपनी समझौता-प्रियता और फिरसे 'क' 'ख' से शुरू करनेकी तैयारी होनेका सबूत देगा, क्योकि सत्याग्रही असहयोगी बन जाय, विरोधी बन जाय, ओरकी लडाई लडता हो, फिर भी अपने रग-रगमें व्याप्त सहयोग, मित्रता और सुलहकी इच्छा को नही गवायेगा।

५ जबतक विरोधीके अतरमें ऐसी आवाज न उठे जिससे उसका हृदय-परिवर्तन हो तबतक कुछ अन्यायोके दूर हो जाने पर भी यह नही कहा जा सकता कि दिल साफ हो गया और सत्याग्रहका काम पूरा हो गया।

६ इस कारण, इस स्थितिसे पहले होनेवाले समझौतोमें सत्याग्रहीको कितनी ही छूटें देनी पडती है और कितने ही अन्यायोको पी जाना पडता है। ऐसा करनेमें सत्याग्रही असली अन्यायके विषयको छोडे बिना, उसे दूर करानेकी कोशिशमें विरोधीकी ओरसे हुए दूसरे अन्यायोके प्रति उदारवृत्ति दिखाता है।

८

उपवास

१ उपवासको सत्याग्रहके साधनके रूपमे काममें लानेमें अक्सर बहुत जल्दबाजी और भूले होती है।

२ व्यक्तिके विरुद्ध किये गये सत्याग्रहमें उपवासका जिस अशतक उपयोग किया जा सकता है उस अशतक समाज अथवा व्यवस्थाके विरुद्ध नही किया जा सकता।

३ व्यक्तिके मुकाबले भी उपवासरूपी सत्याग्रह विवश होनेपर ही करना चाहिए। सम्भव है कि उपवाससे विरोधीकी न्याय या धर्मवृत्ति जाग्रत न होकर उसकी केवल कृपावृत्ति ही जागे, अथवा 'झगडेका मुह काला' करनेके भावसे वह सत्याग्रहीकी 'जिद' पूरी कर दे। इसे सत्याग्रह की सफलता नही कह सकते।

४ व्यक्तिके प्रति किये गये सत्याग्रहमे यदि उस व्यक्तिसे पहलेका कोई निजी

अथवा मित्रताका संबंध न हो तो उपवासके उपायसे काम लेना उचित नहीं है।

५ साधारणतः यह कहा जा सकता है कि उपवासरूप सत्याग्रह कुटुंबी, निजी मित्र, गुरु, शिष्य, गुरुभाई आदि निजी तौरपर परिचित लोगोंके साथ ही किया जा सकता है। इसी प्रकार समाज अगर अपना ही हो और पहले उसके हाथों हुई सेवासे सत्याग्रही उसका आदरपात्र हो गया हो, तभी उस समाजके अन्यायके प्रति उपवास-रूप सत्याग्रह किया जा सकता है।

६ व्यक्तिके प्रति किये जानवाले सत्याग्रहमें निजी अन्यायके लिए तो कभी उपवास करना ही न चाहिए। वह व्यक्ति अगर हमारे साथ मित्रताका दावा रखता हो, और किसी तीसरे व्यक्ति या वर्गके या स्वयं अपने प्रति कोई अनुचित आचरण उससे हो रहा हो, तो दूसरे उपाय आजमानेके बाद उपवास किया जा सकता है।

७ व्यवस्थाके विरुद्ध किये गये सत्याग्रहमें उपवास आखिरी कदम है। जब सत्याग्रही पराधीन स्थितिमें हो और सत्याग्रहके दूसरे उपायोका रास्ता उसके लिए बंद हो, तथा व्यवस्था द्वारा होनेवाला अधर्म उसे इतनी पीड़ा दे कि अधर्म या अन्याय को सहन करके जीना सत्त्वहीन बनकर जीने जैसा हो जाय, तब प्राण छोड देने को तैयार होकर ही वह अनशन आरम्भ कर सकता है।

८ ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है, इसका निर्णय करनेमें वह बहुत भावुकतासे काम न लेगा, बल्कि उस व्यवस्थाको चलानेवाले व्यक्तियोकी कठिनाइयोका तथा उनकी पुरानी आदतोका भी उचित विचार करेगा और उनके लिए मुनासिब गुंजाइश रखेगा। फिर अनिवार्य और आकस्मिक अन्याय, और जान-बूझकर किये अन्याय अथवा अन्यायकारी नियमोमें भी वह विवेक करेगा। इसके सिवा, इनमें भी निजी अन्यायोको वह दिल कडा करके सहन कर लेगा। कारण यह कि मनुष्य जब जान-बूझकर अन्यायको सहन करता है तब उसकी सत्त्व-हानि नहीं होती, पर जब दीनता, भय अथवा सिर्फ जीते रहनेके मोहसे अन्यायको सहता है तब सत्त्व-हानि होती है।

९. एक ओरसे सत्याग्रहके रूपमें उपवास आरंभ करना और दूसरी ओरसे

अपनी माग मजूर करानेके लिए विरोधीके अफसरोसे उनपर दबाव डलवानेकी कोशिश करना ठीक नही है। ऐसे उपवासको सत्याग्रह नही कह सकते।

१० अपने अथवा अपने मित्रो या साथियोके दोषोके प्रायश्चित रूपमें या मित्रों, साथियोको उनकी किसी शुद्ध प्रतिज्ञा पर दृढ रखनेके लिए उपवास करना प्रस्तुत प्रकरणके अर्थमें सत्याग्रह नही किंतु तपश्चर्या है। विवेकपूर्वक की गई ऐसी तपश्चर्याके लिए जीवनमें स्थान है, पर उसकी चर्चाका यह स्थान नही है।

९

असहयोग

१ जहा पहले सहयोगसे दोनो पक्षोका काम चलता आया हो वही असहयोगरूपी सत्याग्रह आजमाया जा सकता है।

२ इसमे असहयोगीकी सहायताके बिना जहा विपक्षीका काम चल सकता है वहा असहयोगका अर्थ दूसरे पक्षका त्याग अथवा अपनेभरकी शुद्धि इतना ही होता है। सत्याग्रहमें इसकी भी गुजाइश है। जैसे, मालिकको दूसरे बहुत नौकर मिल सकते हैं फिर भी मालिकके अधर्ममें हाथ बटानेकी इच्छा न रखनेवाला नौकर अपना इस्तीफा पेश करदे, अथवा दूसरे बहुतसे लोग शराबखाना चलानेको तैयार बैठे हो फिर भी कोई कलालका पेशा छोड दे तो यह इस प्रकारका असहयोग कहलायेगा। इसी प्रकार अधर्ममें हठपूर्वक रहनेवाले कुटुबी, मित्र, इत्यादिका त्याग भी ऐसा ही सत्याग्रह है।

३ जहां ऐसी परिस्थिति हो कि हमारी मददके बिना दूसरे पक्षका काम चल ही न सकता हो वहा असहयोग बहुत ही उग्र सत्याग्रह है। अत वह तभी आरम्भ किया जा सकता है जब सत्याग्रहीको अपना मार्ग स्पष्ट धर्मरूप जान पडे। इसमें विपक्षीका काम मेरे बिना नही चल सकता यह बात सत्याग्रही भूलता नही और इस वस्तुस्थितिमे उसे अपना बल दिखाई देता है। इससे विपक्षीको परेशान करनेके लिये भी इसका उपयोग होनेकी सभावना है।

४ जब विपक्षी अपने सहयोगका सर्वथा दुरुपयोग करता जान पड़े और उसके

द्वारा निर्दोषोंको पीड़ा पहुचती दिखाई दे तब तो ऐसा असहयोग उचित और आवश्यक ही हो जाता है।

५. असहयोगमें विरोधीके जो-जो काम उसकी प्रत्यक्ष सहायताके बिना न चल सकते हो उन सबमेंसे वह अपनी सहायता हटा लेगा। जहां उसकी प्रत्यक्ष सहायता न मिलती हो पर विरोधीको महत्व मिलता हो या उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती हो वहां भी वह ऐसी सहायता हटा लेगा और इससे स्वयं उसको जो लाभ मिलता हो वह छोड़ देगा।

६ विरोधी अपनी योजना सत्याग्रही पक्षकी सहायताके बिना नहीं चला सकता यह अनुभव कराना इस असहयोगका लक्ष्य है। इसलिये सत्य-अहिंसादि साधनों द्वारा यह असहयोग यहांतक बढ़ाया जा सकता है जिससे वह योजना या काम रुक जाय।

७ इस असहयोगमें किस क्रम और कितनी तेजीसे आगे बढ़ना चाहिए यह अनुभवसे मालूम होता है। पर असहयोगका मार्ग ग्रहण करनेवालेको यह प्रतीति हो जानी चाहिए कि विरोधीका काम अथवा व्यवस्था इतनी दूषित है कि उसकी जगह दूसरी व्यवस्था तुरन्त न हो सके तो भी वर्तमान व्यवस्थाका टूट जाना अधिक इष्ट है।

८ असहयोगका दुरुपयोग होना सभव है इसलिए सत्याग्रही असहयोग और अ-सत्याग्रही असहयोगका भेद सावधानतापूर्वक समझ लेनेकी आवश्यकता है। सत्याग्रहमें कष्ट-सहनकी बात रहती ही है, इसलिए यदि असहयोग करनेवालेको कुछ भी कष्ट न उठाना पड़े तो उस असहयोगके सत्याग्रह न होने की बहुत सभावना है।

१०

सविनय अवज्ञा

१ सविनय अवज्ञा दो तरहकी हो सकती है—किसी विशेष अन्यायकारी हुक्म या कानून की, केवल उसी हुक्म या कानूनको रद्द कराने भरके लिये और असहयोगके ही खास कदमकी भांति, अन्याय—अधर्म किये अथवा निर्दोष या तटस्थ जनताको अनुचित असुविधा पहुचाये बिना तोड़े जा सकनेवाले, आमतौरसे

तमाम कानूनो की है।

२ मनुष्य चोरीसे किसी कानूनके डरसे ही दूर नहीं रहता बल्कि उसे अधर्म समझकर ही बचता है। अत सविनय अवज्ञामें ऐसे कानून नहीं तोडे जा सकते।

३ गाडीको सडक के गलत बाजूसे न चलाना, रास्तोपर आवागमनका नियमन करनेके लिये तैनात पुलिसके सिपाहीकी आज्ञा मानना, रातको देरतक शोरगुल न मचाना, महत्वके कारण बिना रेलकी जजीर न खींचना, इत्यादि हुक्मोको तोडने से निर्दोष तथा तटस्थ मनुष्योको अनुचित असुविधा होती है, इसलिये ऐसी आज्ञाओ-को भी भग नही किया जा सकता।

४ किन्तु मनुष्यके राज्यके प्रति असतोष न दिखानेके दो कारण हो सकते हैं— राज्यसे उसे सतोष हो और इस कारण उसके प्रति उसकी भक्ति हो, अथवा कानूनसे डरकर। सत्याग्रही कानूनसे डरकर सरकारके प्रति असतोष प्रदर्शित करनेसे न रुकेगा, और कही सविनय-अवज्ञाकी आवश्यकता उपस्थित होनेपर तो ऐसे कानूनका तोडना फर्ज भी हो सकता है।

५ उसी प्रकार उचित सीमाके अन्दर रहकर, अपने देशके किसी भी हिस्सेमें जाना और रहना तथा शातिपूर्ण जुलूस निकालना, सभा-सम्मेलन, जन-सेवाके कार्य, अनुचित कामों अथवा बुराइयोके खिलाफ पिकेटिंग आदि करना या इनका आयोजन जनताका साधारण अधिकार है, इस हकपर सरकारकी ओरसे प्रतिबन्ध हो तो सत्याग्रही उस आज्ञाको निम्न-लिखित कारणोंसे मानता है—

(अ) सरकार प्रतिबधकी आज्ञाके लिए जो दलीलें देती है वे उसे वाजिब मालूम होती हों, अथवा

(आ) ऐसे हुक्मोंके तोडे जानेमें सरकार और जनताके झगडेके मूल विषय किनारे रह जाते हो और दूसरे अप्रस्तुत विषय महत्व प्राप्त कर लेते हों, और जनताका ध्यान असली विषयकी तरफसे हटकर इन छोटी-छोटी बातोपर लग जानेकी सभावना हो। ऐसे कारण न होनेपर ऐसी आज्ञाका सविनय अवज्ञा-रूप सत्याग्रह किया जा सकता है।

६ इसी तरह सत्याग्रही सरकारको इसलिए कर देता है, कि उस राज्यको

कायम रखना वह इष्ट समझता है । पर यदि उसे यह निश्चय हो जाय कि इस राज्यव्यवस्थाका नाश करना ही धर्म है तो उस राज्यको कर देनेके कानूनोंको वह तोड सकता है, परन्तु इसीके साथ उस राज्यसे किसी तरहका फायदा वह कोशिश करके न उठायेगा ।

७ जहा प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति हो, या सरकार और जनतामें सामान्यतः सहयोग हो, अथवा तीव्र आदोलन का अभाव हो, वहा भी व्यक्तिगत अधिकारियों द्वारा गलतफहमीसे अथवा हुकूमतके नशेमें, अन्यायकारी आज्ञायें निकाली जानेकी सभावना रहती है । ऐसी फुटकर अन्यायी आज्ञाओको सदा सविनय अवज्ञाका विषय बनाना उचित नही । यह नही मान लेना चाहिए कि ऐसे अन्यायोको सह लेनेसे हानि ही होती है । उलटे, उस समय जनता तथा नेताओ द्वारा दिखाया हुआ धीरज और उदारता जनताको अच्छी शिक्षा देनेवाली साबित होती है । जो इस प्रकार, भयसे नहीं बल्कि जान-बूझकर, अन्यायोको सह लेना और आज्ञाका पालन करना जानते है वही मौका पडनेपर, सविनय अवज्ञा भी उत्तम रीतिसे कर सकते है ।

८ यदि सविनय अवज्ञाका आदोलन ऐसा रूप ग्रहण करले जिससे विरोधी अथवा तटस्थ लोगोके जान-मालको हानि पहुचती हो, या बेकसूर सताये जाते हो, और सत्याग्रही यह अनुभव करे कि वह इसे रोकनेमें असमर्थ है तो वह आदोलन को स्थगित कर देगा और अपनी सारी ताकत उस हानि और उत्पीडनको रोकने में लगा देगा ।

११

सत्याग्रहीका अदालतमे व्यवहार

१ कानूनकी सविनय अवज्ञा करनेका सकल्प करनेवाले सत्याग्रहीको उस अवज्ञाके फलस्वरूप हो सकनेवाली पूरी सजा भुगतनेको तैयार रहना ही चाहिए ।

२ अत जब किसी ऐसे कानूनको भग करनेका इलजाम लगाकर अधिकारी उसे पकडने आयें तो वह बिना किसी भी आनाकानीके गिरफ्तार हो जावे ।

३ अगर असलियत यह हो कि सत्याग्रहीने कानून तोडा ही न हो, फिर भी उसके खिलाफ झूठा सबूत पेश करके यह दिखाया जाये कि उसने कानून तोडा है, तो सत्याग्रहीको चाहिये कि वह अदालतकी कार्रवाईमें कोई भाग न ले और अपना बचाव भी न करे। खुद उसका विचार उस कानूनको तोडनेका था ही, इसलिए बिना तोड़े ही जो सजा उसे मिल रही हो उसका उसे स्वागत ही करना चाहिए।

४ कानून तोडा ही हो तो उसे चाहिये कि अपना अपराध स्वीकार कर ले और सजा माग ले।

५ सफाई न देनेके विषयमे नीचे लिखे अपवाद है—

(अ) सत्याग्रह-सिद्धातके विरुद्ध होने के कारण, जिस प्रकार के अपराधके करनेका उसने कभी इरादा ही न किया हो वैसे अपराधका इलजाम उसपर लगाया जाय तो सत्य की खातिर वह सफाई पेश करे, जैसे कत्ल के इलजाम मे।

(आ) सत्याग्रहियो अथवा अधिकारियोके व्यवहार या नीतिकी कोई ऐसी बात पैदा हो गई हो जो सिद्धान्त या सार्वजनिक महत्त्वका विषय हो और उसमे सत्य प्रकट होने की आवश्यकता जान पडती हो, तो वहा सफाई देनी पडती है। जैसे, जब पुलिसने अत्याचार किया है इस बातकी दिलजमई करके सत्याग्रहीने यह हकीकत जाहिर की हो, पर इस बातको गलत बताकर झूठी बात प्रकाशित करनेका अभियोग उसपर चलाया गया हो, अथवा जब सत्याग्रहीपर मार-काट और दगे-फिसादको उत्तेजन देने का इलजाम लगाया गया हो।

(इ) जहा ऐसा जान पडता हो कि अधिकारियोने उत्साहके अतिरेकमे या भ्रमसे ऐसे हुक्म निकाले हो जिनके बारेमे यह मानने के लिए कारण हो कि सरकारका इरादा वैसे हुक्म निकालनेका नही था, और जिन कानूनो की रूसे वे निकाले गये हो वे कानून वैसे अधिकार अधिकारियो को देते है यह न माना जा सकता हो तथा उन हुक्मो की बदौलत ऐसे साधारण लोगो के भी भारी सकटमे पडनेकी सभावना हो जिनका इरादा सत्याग्रह करनेका न हो, वहा सफाई पेश करने-की आवश्यकता उपस्थित हो सकती है।

६ सत्याग्रही अदालतके काममें भाग न ले इसका अर्थ यह नही है कि वह अदालतके प्रति तुच्छता या अविनयका व्यवहार करे, अथवा असत्याचरण करे। अत उसे किसी अधिकारीका अपमान या उपहास न करना चाहिए और न उसे तुच्छतासूचक उत्तर देना चाहिए। इसके सिवा वह अपना नाम-धाम न छिपाये, परन्तु यदि अधिकारी मामलेसे सबध न रखनेवाली अथवा दूसरे अभियुक्तो या मनुष्योसे सबध रखनेवाली बातें पूछें तो सत्याग्रही उनका उत्तर देने के लिए बाध्य नही है, और ऐसे जवाब देने से उसे विनयपूर्वक इनकार कर देना चाहिए।

७ जबतक सत्याग्रही पुलिस की हिरासतमें होता है तबतक उसे नहलाने-धुलाने, खिलाने-पिलाने तथा सलाहकार और मित्रोसे मिलनेकी सुविधा देना और उसके प्रति सभ्यताका व्यवहार करना पुलिस पर फर्ज है। उसी प्रकार सत्याग्रहीका भी कर्तव्य है कि वह पुलिसके साथ शिष्टताका व्यवहार करे। अगर पुलिसकी ओरसे अडचने पैदा की जाय, कष्ट दिया जाय, असभ्यता का बर्ताव या मारपीट की जाय तो सत्याग्रही को चाहिए कि वह इसकी सूचना पुलिस के बडे अफसरको (वह मिल सके तो) दे, और वह न मिल सके या ध्यान न दे तो अपनी शिकायत मजिस्ट्रेटके सामने रखे। लेकिन मजिस्ट्रेट भी उसपर ध्यान न दे तो यह मानकर कि ये तकलीफे सरकारकी सम्मतिसे दी जा रही है अपने सलाहकारो-को सारी हकीकतसे आगाह करके शांत रहना चाहिए।

८ यदि सत्याग्रहीको जुर्मानेकी सजा दी जाय तो वह खुद कभी जुर्माना जमा न करे और न किसीको जमा करनेकी प्रेरणा करें, बल्कि जमा न करनेका धर्म समझाये और उसके एवज मे कैद की सजा भुगत ले।

९ जुर्माना वसूल करने के लिए उसके घर यदि कुर्की ले आयी जाय तो अपना माल-असबाब कुर्क हो जाने दे, और इससे अधिक हानि होती हो तो वह भी सह ले, पर खुद जुर्माना अदा न करे। क्योंकि जिसने अपनी सत्त्वरक्षा के लिए कानून तोडा है उसे उसके लिए सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार रहना ही चाहिए। इस कारण अपने हाथों जुर्माना अदा न करके वह अपनी सत्त्वहानि न होने देगा।

१० सत्याग्रही ऊंचा दर्जा प्राप्त करनेका प्रयत्न न करे। वर्गीकरणके नियमों

के पीछे कुछ अशतक सत्याग्रहियो और मामूली कैदियों में, तथा सत्याग्रहियोमें भी परस्पर भेद डालने का हेतु रहता है। उसमे ईर्ष्या, भय और लोभ भी आते है। इसके सिवा इसका उपयोग भी अक्सर मनमाने तौर पर और नीचेका दर्जा देकर अधिक सजा देने के लिए किया जाता है। इसलिए वर्गीकरणकी यह नीति ही उचित नही है। फिर भी सत्याग्रहीको जो श्रेणी मिली हो उसकी सुविधा वह भोगता हो तो यह नही कह सकते कि इसमे सत्यका भग होता ही है।

१२

सत्याग्रहीका जेलमें व्यवहार

१ सत्याग्रही जेलमे भी अपनी शिष्टता और विनय कदापि न छोडे।

२ जेलके नियमोको भग करनेकी नही बल्कि साधारणत पालन करने की वृत्ति रखे और जहा किसी महत्वके सिद्धात या स्वाभिमानका प्रश्न हो वही नियमका विरोध करनेको उद्यत हो। इस दृष्टिसे वह कोई चीज चोरीसे जेलमे न लाये, किसीको घूस न दे तथा नियमके बाहर किसी प्रकारकी सुविधा प्राप्त करनेके लिए किसीकी खुशामद न करे।

३ श्रम करना जेलका ही नही बल्कि प्रकृति या धर्मका नियम है। अत जेलके नियमानुसार दिया हुआ काम स्वीकार करने तथा करनेमे सत्याग्रही जी न चुराये।

४ जो काम समयकी अवधिके अन्दर अपनी तबीयत खराब होने या दूसरे कारणसे पूरा न कर सकता हो उसकी ओर उस कामके अधिकारीका विनय-पूर्वक ध्यान दिलाये। फिर भी वह काम उसे सौंपा जाय तो उसे करनेका यत्न करे और जो कष्ट हो वह सह ले।

५ डाक्टरी जाचमें उसे अपने रोग सही-सही बताने चाहिए। उसे कोई छूतवाली बीमारी हो तो उसे छिपाना न चाहिए।

६ कैदी अपने धर्म या नियम के विरुद्ध दवा या इलाज करानेको बाध्य

नहीं है, पर इससे वह किसी दूसरी तरहकी दवा या इलाजकी अधिकारपूर्वक माग नही कर सकता। टीका लगवाने जैसे कुछ इलाजोसे इनकार करनेपर वह दडका पात्र भी समझा जा सकता है। कैदीको अगर सच्चा धार्मिक आग्रह हो तो उसे यह सजा भुगत लेनी चाहिए, पर महज सजा भुगत लेनेको तैयार होनेके कारण ही झूठ-मूठ उसे धार्मिक रूप देकर आग्रही न बने।

७ अपने स्वास्थ्यके सबधमे जो शिकायत हो और जिस सुविधाकी आवश्यकता हो उसे वह सबद्ध अधिकारीके सामने रखे। पर उसपर सतोषजनक कार्रवाई न हो तो उसे भी सत्याग्रहके कष्टोमे मानकर शातिसे सहन करे। ऐसी सुविधाए चुरा-छिपाकर प्राप्त करके स्वास्थ्य-रक्षाका प्रयत्न न करे। इस प्रकार स्वास्थ्यरक्षा करनेसे अधिकारी यही समझेगा कि उसकी माग अनुचित थी।

८ यदि उनके ऐसे कोई व्रत-नियम हो जिनका पालन जेलमे भी अवश्य कर्तव्य हो तो उनके बारेमें सबद्ध अधिकारीसे कहकर आवश्यक सुविधा माग सकता है। पर ऐसे खास व्रत-नियमवाला व्यक्ति जेलके ही खर्चेसे उसका पालन करनेका आग्रह नही रख सकता, इसलिए यदि अपने खर्चेसे ऐसी सुविधा मिल जाय तो इससे उसे सतोष करना चाहिए। ऐसी सुविधा न मिले तो अपने व्रत-नियमका पालन करनेके लिए जो कष्ट उसे सहना पडे वह सह लेना चाहिए।

९ केवल जेल-जीवनमे पालनेके लिए कोई खास व्रत-नियम सत्याग्रहीको स्वीकार न करना चाहिए।

१० मार या गाली अथवा जूठा, गदा, कच्चा, सडा या कीडे पडा हुआ खाना खा लेना कैदी पर फर्ज नही है। अत उसे ऐसी बाते सहन न कर लेनी चाहिए। मार-पीट या गाली-गुप्ताकी शिकायतकी सुनवाई न हो तो अधिक मार, गाली या सजाकी जोखिम उठाकर भी वह काम करनेसे इनकार कर सकता है और आवश्यक होनेपर उपवास भी करे।

११ न खाने लायक खुराक लेने से वह इनकार करदे और उसके लिए जो सजा मिले भुगत ले।

१२ सत्याग्रही अपने या अपने ही वर्ग (क्लास) के कैदियोके लिए

जेल-व्यवहारमें सुधार होने या सुविधा मिलने के वास्ते सत्याग्रह न करे। हां, वह अन्याय-व्यवहार केवल उसके या उसके वर्गके कैदियों के साथ ही किया जाता हो तो बात दूसरी है। पर सारी जेल-व्यवस्थामें जो सुधार करानेकी आवश्यकता हो सिर्फ उसीके लिए उचित कारण और परिस्थिति मिलने पर वह सत्याग्रहका सहारा ले सकता है।

१३ सत्याग्रहीका इस प्रकार व्यवहार करना जिससे जेल-व्यवस्था ठीक तौरसे चलती रहे सहयोग सत्याग्रहके सिद्धांतका विरोध नहीं है, इसलिए इस तरहकी सारी सहायता जेल-अधिकारियोंको देना सत्याग्रहीका धर्म है। पर सत्याग्रही जेल की वार्डरी या पहरेदारी आदि स्वीकार नहीं कर सकता।

१४ छूटनेके दिन बढ़ानेके लिए सत्याग्रही लालसा न दिखाये।

१५ स्वराज्यके लिए किये जाने वाले सत्याग्रहका उद्देश्य सारी राज्य-व्यवस्थाको जड़से बदल देना है। इसलिए सत्याग्रहीको जेलमें कोई ऐसा आंदोलन न उठाना चाहिए जिससे जेल-प्रबन्धका सुधार एक स्वतन्त्र लड़ाई बन जाय, किंतु अक्षम्य अमानुषी व्यवहार या नियमके खिलाफ ही उसका अवसर आने पर लड़ना चाहिए।

१३
सत्याग्रहीकी नियमावली

कुछ पुनरुक्ति दोष होते हुए भी २३ फरवरी, १९३० के 'नवजीवन' में दी हुई 'सत्याग्रहीकी नियमावली' यहां देने से इस खंडकी उचित पूर्ति होगी। इसमें इस खंडका सुन्दर उपसंहार भी होता है—

१ सत्याग्रहका अर्थ है सत्यका आग्रह। यह आग्रह रखनेसे मनुष्यको अतुल बल मिलता है। इस बलको हम सत्याग्रहका नाम देते हैं।

२ सत्यका आग्रह सच्चा हो तो उसे माता-पिता, स्त्री-पुत्रादिके मुकाबले, राजा-प्रजाके मुकाबले और अंतको संपूर्ण जगत्के मुकाबले काममें लाना पड़ता है।

३ ऐसा व्यापक आग्रह करते समय स्वजन-परजन, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुषका भेद नहीं रहता। अतः किसीके विरुद्ध शरीर-बलका उपयोग नहीं किया

जा सकता। तो जो बल बचा वह अहिंसाका—प्रेमका बल ही हो सकता है। इस बलका दूसरा नाम आत्माका बल है।

४ प्रेमका बल दूसरेको नही जलता, खुद ही जलाता है। इसलिए सत्याग्रही-मे मौत तकका कष्ट हसते-हसते सह लेने की शक्ति होनी चाहिए।

५ इससे यह स्पष्ट है कि सत्याग्रही प्रतिपक्षीका आत्यतिक विरोध करते हुए भी मन, वचन या कायासे विपक्षके किसी भी व्यक्तिका अहित न चाहे और न करे। इस विचार-श्रेणीसे ही असहयोग, सविनय अवज्ञा इत्यादि उत्पन्न हुए हैं।

६ सत्याग्रह की इस उत्पत्ति को जो याद रक्खेगा वह नीचे लिखे नियमोंको आसानीसे समझ सकेगा—

(अ) सत्याग्रही किसीपर क्रोध न करेगा।

(आ) वह विरोधीका क्रोध सहन करेगा।

(इ) क्रोध सहन करते हुए वह विरोधीकी मार सह लेगा पर उसे कदापि न मारेगा, इसी प्रकार गुस्सेमे दिये गये उचित या अनुचित आज्ञाको भी मारके या और किसी डरसे न मानेगा।

(ई) सिपाहीके पकडने आनेपर वह खुशीसे गिरफ्तार हो जायगा। अपनी माल-जायदाद जब्त करने आनेपर वह आसानीसे दे देगा।

(उ) दूसरेकी सम्पत्ति अपने सरक्षणमे होगी तो उसका कब्जा वह मरते दम तक न छोडेगा, फिर भी कब्जा करने आनेवालेको मारेगा नही।

(ऊ) न मारनेके मानी गाली न देना भी है।

(ए) इस दृष्टिसे सत्याग्रही विरोधीका वह अपमान न करेगा।

आजकल प्रचलित कितने ही नारे हिंसक है और सत्याग्रहीके लिए सर्वथा त्याज्य हैं।

(ऐ) सत्याग्रही ब्रिटेनके झडेको सलामी नही देगा, पर उसका अपमान भी न करेगा। अधिकारी या किसी अंग्रेज का वह अपमान न करेगा।

(ओ) आदोलनके सिलसिलेमें किसी अग्रेज या किसी सरकारी कर्म-

धारीका कोई अपमान करे या उसपर हमला करे तो सत्याग्राही अपनी जान जोखिम-में डालकर उसकी रक्षा करेगा।

जेल-सम्बन्धी

(ओ) कैद हो जानेपर सत्याग्रही जेलके उन तमाम नियमोंका पालन करेगा जो आत्म-सम्मानके विरुद्ध न हो, और अधिकारियोंके साथ शिष्टतासे व्यवहार करेगा। मसलन वह अधिकारियोंका साधारणतः नमस्कार करेगा, पर वे नाक रगड़ने को कहेंगे तो न रगड़ेगा। वह 'सरकारकी जय' न बोलेगा। जेलका साफ-सुथरा भोजन, जिसमें कोई धार्मिक आपत्ति न हो वह ले लेगा, सड़ा हुआ, कूड़ा-मिट्टी मिला हुआ, मैले बर्तनमें परोसा हुआ या अपमानपूर्वक दिया हुआ खाना वह न लेगा।

(अ) सत्याग्रही खूनी कैदी और अपनेमें भेद न मानेगा। इसलिए उसे अपनेको ऊंचा मान या बतलाकर अपने लिए विशेष सुविधा न मांगेगा, पर शरीर या आत्माकी आवश्यकताकी दृष्टिसे जरूरी सुभीता मांगनेका उसे अधिकार है।

(अ) जिसमें आत्मसम्मानका भंग न होता हो वैसी रियायतें न पाने पर सत्याग्रही उपवास आदि न करे।

दल-सम्बन्धी

(क) अपनी टुकड़ीके सरदारके जारी किये हुए सम्पूर्ण आदेशोंका पालन सत्याग्राही खुशीसे करेगा, चाहे वे उसे पसंद हो या न हो।

(ख) आदेश अपमान-जनक हो, द्वेष-प्रेरित या मूर्खतासे भरा मालूम होता हो तो भी उसका पालन करके फिर ऊपरवाले अफसरसे शिकायत करे। दलमें शामिल होने से पहले शामिल होने की शर्तोंपर विचार करनेका अधिकार सत्याग्रही को है। पर शामिल हो जानेके बाद दलके कड़े-नरम नियमों और उनके नियमनका पालन धर्म हो जाता है। दलके समूचे व्यवहारमें अनीति दिखाई दे तो सत्याग्रही उससे अलग हो सकता है, पर उसमें रहकर नियम भंग करनेका अधिकार उसे नहीं है।

(ग) किसी सत्याग्रहीको किसीसे अपने आश्रितोंके भरण-पोषणकी

आशा न रखनी चाहिए। किसीके लिए कोई प्रबन्ध हो जाय तो उसे अनपेक्षित बात समझे। सत्याग्रहीको अपनेको और अपने आश्रितोंको ईश्वरकी शरणमें ही छोड़ना चाहिए। शरीर-बलके युद्धमें भी, जहां लाखों लोग लड़ते हैं, किसीका भरोसा नहीं रखा जाता। सत्याग्रही युद्धके बारेमें तो कहना ही क्या? सार्वभौम अनुभव यह है कि ऐसोंको ईश्वरने भूखों नहीं मरने दिया।

साम्प्रदायिक झगड़ोंमें

(घ) सत्याग्रही साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़ोंका कारण जान-बूझकर हर्गिज न बने।

(ङ) यदि साम्प्रदायिक झगड़ा हो जाय तो सत्याग्रही किसीकी तरफदारी न करे। जिधर न्याय देखे उसकी मदद करे। वह खुद हिन्दू होगा तो मुसलमान इत्यादि दूसरे मजहबवालोंके प्रति उदारता दिखायेगा, और हिन्दुओंके आक्रमणसे उन्हें बचाते हुए अपने प्राण तक दे देगा। यदि मुसलमान आदिका हिंदूपर हमला हो तो हिन्दूकी रक्षा करनेमें वह अपनी जान दे देगा, पर उनपर किये जानेवाले जवाबी हमलेमें हर्गिज शरीक न होगा।

(च) जिन प्रसंगोंसे साम्प्रदायिक झगड़े उत्पन्न हो सकते हैं उनसे वह अपनेको भरसक अलग रखेगा।

(छ) सत्याग्रहीको यदि जुलूस निकालना पड़े तो वह ऐसा कोई काम न करेगा जिससे किसी भी सम्प्रदायका दिल दुखे। दूसरोंके निकाले हुए ऐसे जुलूसोंमें भी वह शरीक न होगा जिससे किसी धर्म-सम्प्रदायवालोंका दिल दुखता हो।

१४

सत्याग्रहीकी योग्यता

२६ मार्च १९३९ के 'हरिजन-बन्धु' में गांधीजीने एक लेखमें सत्याग्रहीके लिए कम-से-कम निम्नलिखित योग्यतायें आवश्यक मानी हैं—

१. उसे ईश्वरपर अचल विश्वास होना चाहिए, क्योंकि वही एकमात्र अटूट आधार है।

२ उसकी सत्य और अहिंसामें धर्मभावसे श्रद्धा होनी चाहिए और इसलिए मनुष्य-स्वभावके अंदर बसने वाली भलाईमें उसका विश्वास होना चाहिए। इस भलाईको सत्य और प्रेमके द्वारा स्वय दुःख सहकर जाग्रत करनेकी वह सदा आशा रक्खे।

३ वह शुद्ध जीवन बितानेवाला हो तथा अपने लक्ष्यके लिए अपना जान-माल कुरबान करनेको हमेशा तैयार रहे।

४ वह आदतन खादीधारी और साथ ही कातनेवाला हो। भारतवर्षके लिए यह बहुत ही जरूरी चीज है।

५ वह निर्व्यसन हो और सभी प्रकारकी नशीली वस्तुओंसे दूर रहे, जिससे उसकी बुद्धि सदा निर्मल और मन निश्चल रहे।

६ समय-समय पर बनाये गये अनुशासनके नियमोंको वह प्रसन्नता-पूर्वक और मनसे पाले।

७ वह जेल-नियमोंका पालन करे, सिर्फ उन नियमोंको छोडकर जो उसके मानभंगके लिए ही खास तौरसे गढे गये हो।

१५

सामुदायिक सत्याग्रह

कहीं भी सामुदायिक सत्याग्रह करनेके लिये नीचे लिखी अनुकूलताएं आवश्यक हैं। इनके अभावमें सामुदायिक सत्याग्रह शुरू करनेमें मार-काट मच जानेसे आपसमें और जिसके मुकाबले सत्याग्रह शुरू किया गया हो उससे वैर-विरोध बढ़नेका डर रहता है। और संभव है आखिर में बलप्रयोग या दमनके कारण जनता भयभीत हो जाय तथा और ज्यादा दब जाय।

१ सत्याग्रह शुरू करनेकी इच्छा रखनेवाले नेताओंमें परस्पर संपूर्ण विश्वास और विचारोंकी एकता होनी चाहिए। यदि एक दूसरेकी ईमानदारीपर शंका या नेताकी विचारधारापर अविश्वास या अर्द्धविश्वास हो तो इसे सामुदायिक सत्याग्रहके लिए प्रतिकूल परिस्थिति समझना चाहिए।

२. यदि सत्याग्रह चलानेकी इच्छा रखनेवाले नेताओंमें भिन्न भिन्न राजनीतिक विचारोंके लोग हों तो सत्याग्रहके तात्कालिक उद्देश्यके बारेमें भिन्न-भिन्न प्रकारके राजनीतिक विचारोंके वाद-विवाद या उस दृष्टिसे की जानेवाली आलोचनाओंको बन्द करने में सबको एकमत होना चाहिए।

३ सत्याग्रही नेताओंका जनतापर इतना काबू होना चाहिए कि लोग उनकी दी हुई हिदायतोंपर खुशीसे और लगनसे अमल करें। उनकी मना की हुई बात या काम कभी न करे।

४ जनताका नेताओंपर इतना विश्वास होना चाहिए कि विरोधियो की ओरसे उनके विषयमे चाहे जैसी बातें कही-फैलायी जाय, पर उनसे अपनेमें बुद्धि-भेद न होने दे।

५ स्वराज्य अथवा उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सत्याग्रह करना हो तो सत्याग्रह आरम्भ करनेके पहले ही महत्त्ववाले साम्प्रदायिक प्रश्नो के बारेमें समझौता हो जाना चाहिए। ऐसी परिस्थिति न रहने देनी चाहिए कि ऐसे सवाल खडे करके विरोधी पक्ष जनतामें फूट डाल सके।

६ "सत्याग्रही की योग्यता" वाले प्रकरणमे बताई हुई शर्तोंमें विश्वास होते हुए जो उनका पालन नही कर सकते उन्हें सत्याग्रहके तीव्र अर्थात् जोखिमवाले कार्यक्रममें शरीक न होना चाहिए, पर बाहर रह कर वे जनताके विधायक कार्य-क्रमको भलि-भाति चलाते रहें, और उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लें। आम जनताको उन्हें पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिए।

७ सत्य और अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण, व्यापक खादी-प्रचार और मद्यनिषेधके विषयमे यदि जनतामें प्रबल बहुमत तथा सत्याग्रहमें दिलचस्पी रखनेवालोंमें संपूर्ण एकमत न हो तो सामुदायिक सत्याग्रहके लिये अनुकूल परिस्थिति नहीं मानी जा सकती। तबतक सच्चा स्वराज्य असंभव ही है।

८ सत्याग्रहकी किसी भी लड़ाईके पूर्व और उसके दौरानमें भी विरोधी व्यवस्था या अधिकारीके विषयमें तिरस्कारका भाव न होना चाहिये, और ऐसा भाव

पैदा करनेवाली भाषाका व्यवहार न करना चाहिये । यदि प्रचारकोंको वैसा करनेसे रोका न जा सकता हो तो यह अनुकूल परिस्थिति नहीं मानी जा सकती ।

९ गुप्त प्रबन्ध किये बिना सत्याग्रहका जारी रहना शंकास्पद हो तो यह अनुकूल स्थिति नहीं है ।

१० जबतक अनुकूल परिस्थिति न हो तबतक चतुर्विध रचनात्मक कार्य-क्रम तथा दूसरी लोकोपयोगी सेवा करते रहना ही स्वराज्यकी साधना है। बहुत वर्षोंतक ऐसा करना पड़े तो भी इसमें हानि नहीं है। इसे प्रगति ही कहेंगे, पीछे हटना नहीं ।

खण्ड ५ : : स्वराज्य

१

रामराज्य

१ रामराज्य स्वराज्यका आदर्श है। इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेमका राज्य, अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनताका स्वराज्य।

२. जनताके स्वराज्यका अर्थ है—प्रत्येक व्यक्तिके स्वराज्यसे उत्पन्न जनसत्तात्मक राज्य। ऐसा राज्य केवल प्रत्येक व्यक्तिके नागरिकताके नाते उसका जो धर्म है उसका पालन करनेसे ही उत्पन्न होता है।

३ (क) इस स्वराज्यमें किसीको अपने अधिकारका खयाल तक नहीं होता। अधिकार आवश्यक होनेपर खुद-ब-खुद दौड़ा चला आता है। इसमें लोगों के अपने हक जाननेकी जरूरत नही होती, पर अपना धर्म जानना और पालना आवश्यक होता है। कारण यह कि कोई कर्तव्य ऐसा नही है जिसके अन्तमें कोई हक न हो और सच्चे हक अथवा अधिकार तो केवल पाले हुए धर्ममेंसे ही पैदा होते हैं।

(ख) जो सेवाधर्म पालता है उसीको नागरिकताका असली अधिकार मिलता है, और वही उसे पचा सकता है।

(ग) वैसे ही झूठ न बोलनेका (अर्थात् सत्यका) और मारपीट न करनेका (अर्थात् अहिंसाका) धर्म पालन करनेसे जो प्रतिष्ठा मिलती है वह उसे बहुतेरे अधिकार दिला देती है और ऐसा मनुष्य अपने अधिकारका भी सेवाके लिये उपयोग करता है, स्वार्थके लिये कदापि नही।

४ रामराज्यमें एक ओर अथाह संपत्ति और दूसरी ओर करुणाजनक फाकेकशी नहीं हो सकती; उसमें कोई भूखा मरने वाला नहीं हो सकता; उस राज्य का आधार पशुबल न होगा, बल्कि, लोगोंके प्रेम और समझ-बूझकर और बिना डर दिये हुए सहयोग पर अवलंबित रहेगा।

५ उसमें बहुमत या बडी जाति अल्पमत या छोटी जातिको नहीं दबाती बल्कि अल्पमत भी बहुमत जैसी ही स्वतत्रता भोगेगा और बडी जाति छोटी जातियों के हितकी रक्षा करना अपना फर्ज समझेगी।

६ वह करोडोका और करोडोके सुखके लिये चलनेवाला राज्य होता है। उसके विधानमें जिसे मुख्य अधिकारीकी जगह मिली होगी वह चाहे राजा कहलाता हो, अध्यक्ष कहलाता हो या और कुछ कहलाता हो, वह प्रजाका सच्चा सेवक होनेके नाते ही उस पदपर होगा। प्रजाके प्रेमसे वहा टिकेगा और उसके कल्याणके लिये ही प्रयत्न करता रहेगा। वह जनताके धनपर गुलछर्रे नही उडायेगा और अधिकार-बलसे लोगोको सतायेगा नही किंतु राजा या तत्सदृश कहलाते हुए भी वह फकीरके मानिंद रहेगा।

७ राम-राज्यका अर्थ है कम-से-कम राज्य। उसमे लोग अपना बहुत कुछ व्यवहार परस्पर मिल कर अपने आप चलायेंगे। कानून गढ-गढकर अधिकारियोंके द्वारा दडके भयसे उनका पालन कराना उसमें लगभग नही होगा। उसमें सुधार करनेके लिये जनता धारासभा या अधिकारियोकी राह देखती बैठी न रहेगी। बल्कि लोगोके चलाये सुधारोके अनुकूल पडनेवाले प्रकारसे कानूनमें सुधार करनेके लिये व्यवस्थापिका सभायें और व्यवस्था करनेके लिये अधिकारी यत्न करेंगे।

८ उसमे खेतीका धधा बढतीपर होगा और दूसरे सब धधे उसके सहारे टिकेंगे। अन्न और वस्त्रके विषयमे लोग स्वाधीन होगे और गाय-बैलोंकी भी समृद्ध दशा होनेसे आदर्श गो-रक्षा की व्यवस्था होगी।

९ उसमें सब धर्म, सब वर्ण और सब वर्ग समान भावसे मिल-जुलकर रहेंगे और धार्मिक झगडे या क्षुद्र स्पर्धा, अथवा विरोधी-स्वार्थ सरीखी चीज ही न होगी।

१० उस राज्यमें स्त्रीका पद पुरुषके समान ही होना चाहिये।

११ उसमें कोई मनुष्य सपत्ति या आलस्यके कारण निरुद्यमी न होगा, कोई मेहनत करते हुए भी भूखो मरनेवाला न होगा, किसीको उद्यमके अभावमें मजबूरन आलसी न बने रहना पडेगा।

१२ उसमें आतरिक कलह न होगा, और न विदेशोंके साथ ही लडाई होगी।

उसमें दूसरे देशों को लूटनेकी, जीतनेकी या उनके व्यापार-धंधे अथवा नीतिको नाश करनेवाली राजनीति अस्वीकृत होनी चाहिये। वह दूसरे राष्ट्रोंके साथ मित्र-भावसे रहेगा।

१३. अतः रामराज्यमें फौजी खर्च कम-से-कम होना चाहिये।

१४. उसमें लोग केवल लिख-पढ़ सकनेवाले ही न होंगे बल्कि सच्चे अर्थमें शिक्षा पाए हुये होंगे, अर्थात् उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जो मुक्ति देनेवाली और मुक्तिमें स्थिर रखनेवाली हो।

१५. यह एक ही देश या जनताके लिए नहीं बल्कि सारी दुनियाके उत्तम राज्यका आदर्श है। यदि एक जगह भी यह सिद्ध हो जाय तो फिर उसकी छूत सारी दुनियामें फैल जानी चाहिए।

१६. यह स्थिति आनेपर भिन्न-भिन्न राज्योंमें झगड़ेका कारण ही न रहेगा। अर्थात् युद्ध जैसी चीज ही न रह सकेगी। सारे मतभेद, विरोध, झगड़े अहिंसक मार्गसे ही निपटा करेंगे।

२
व्यवस्था-सुधार और विधान-सुधार

१. व्यवस्थाके सुधार और विधानके सुधारका सवाल एक ही नहीं है।

२. व्यवस्थाके सुधारका अर्थ है, सत्ताका उपयोग करनेवाले अधिकारियोंकी प्रजाके प्रति व्यवहार करनेकी सारी मनोवृत्तिमें सुधार होना।

३. विधानके सुधारमें कानून बनानेके लिये और राज्यके भिन्न-भिन्न विभागों पर निगरानी रखने तथा उसकी नीति निश्चित करनेके लिये कितने लोगोंके इकट्ठा होने की जरूरत है, उनकी नियुक्ति किस तरह होनी चाहिये, कहां बैठकर किस तरह उन्हें बहस-विचार करना चाहिये, आदि बातोंका विचार किया जाता है।

४. कुछ दिनोंसे शासन-विधानके प्रश्नको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दिया जारहा है। इससे असली विषयको भूलकर हम राज्यके बाहरी रूप-रंगके विचारमें उलझ जाते हैं।

५ शासन-विधानकी बारीकियों तथा उसकी भिन्न-भिन्न योजनाओंके सूक्ष्म भेदों और उनका महत्व समझनेकी आशा देशके करोडो लोगोसे नही रक्खी जा सकती। इसलिये वे इन विषयोमें इतनी दिलचस्पी नही ले सकते कि उनपर स्वय विचार करें।

६ देशका शासन-विधान राजसत्तात्मक कहलाता है या प्रजा-सत्तात्मक, साम्राज्यका अग कहलाता है या स्वतत्र, छ हजार प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है या छ सौ प्रतिनिधियो द्वारा, उसमें हिंदू अधिक है या मुसलमान, देशके करोडो अपढ ग्रामवासियोंको इन विषयोका महत्व समझाना कठिन है और इन बातो की बहसमें उन्हे घसीटनेमें बहुत लाभ भी नही जान पडता।

७ उनके लिये तो महत्वका प्रश्न यह है कि उनके गांवका मुखिया या पटवारी उनके पास हुकूमतका रोब दिखाने, धौंस जमाने और घूस मागने आता है या उनका मित्र, सलाहकार और सकटका साथी बनकर रहता है, वह अपने आपको लोगोको चाहे जैसे हाकनेके लिये नियुक्त छोटा या बडा अफसर समझता है या जनताका सेवक मानता है।

८ इसके सिवा जनताके लिये महत्वका प्रश्न यह है कि उसके सिरपर करका बोझ भारी है या हल्का, यह कहकर उससे किस प्रकार, किस रूपमें और किस वक्त वसूल किया जाता है और इन करोका उपयोग किन कामोमें होता है?

९ ऐसे सुधार केवल किसी विशेष प्रकारका विधान बना देनेसे नही हो जाते, बल्कि जिनपर उसे अमलमें लानेकी जिम्मेदारी आती है उनके अन्दर पोषित धर्म-बुद्धि और अपने मतको प्रभावकर बनानेके लिये जनतामें जो पुरुषार्थ करनेकी शक्ति होती है उससे होता है। शासन-विधानका बाह्य रूप कैसा ही हो, यदि अधिकारी धर्मबुद्धि वाला प्रजा-सेवक और प्रजा पुरुषार्थी हो तो राज्यकी ओरसे वहा अधिक समयतक अन्याय, जोर-जुल्म नहीं हो सकते।

३

साम्प्रदायिक एकता

१. जबतक देशके भिन्न-भिन्न संप्रदायोंमें एकता-मेल नहीं कराया जा

एकता तबतक स्वराज्य प्राप्त करना और उसे कायम रखना असम्भव है ।

२. इस एकताकी स्थापनाके लिये सबमें आपसमें रोटी-बेटी व्यवहार होना ही चाहिये, अथवा उनके भिन्न-भिन्न धर्मों और संस्कृतियोंके भेद मिट जाने चाहियें और किसी एक ही धर्म की अथवा किसी भी धर्मका आधार न रखनेवाली संस्कृति निर्माण होनी चाहिये, यह आवश्यक नहीं है । इष्ट भी नहीं है । प्रत्येक जातिको अपनी-अपनी विशेषता कायम रखते हुए एकता करनी चाहिये ।

३ परन्तु इस एकता की स्थापनाके लिये बड़े सम्प्रदायोंका छोटे संप्रदायों-को अभय देना जरूरी है । बड़े संप्रदायोंको चाहिये कि छोटे सम्प्रदायोंको इस बातका इतमीनान दिला दें कि बड़े सम्प्रदायोंका रुख और विरद ऐसा होगा कि अगर न्याय और सार्वजनिक हितके विरुद्ध हो तो उनके धर्म, भाषा, साहित्य, मजहबी कानून, रस्म-रिवाज, शिक्षा, अर्थ-प्राप्तिके अवसर आदि विषयोंमें उन्हें हानि सहन न करनी पड़ेगी ।

४ अगर स्थिति यह हो कि बड़े सम्प्रदायको छोटे सम्प्रदायसे डर लगता हो तो वह इस बातकी सूचक है कि या तो (१) बड़े संप्रदायके जीवनमें किसी गहरी बुराईने घर कर लिया है और छोटे सम्प्रदायमें पशुबलका मद उत्पन्न हुआ है (यह पशुबल राजसत्ताकी बदौलत हो या स्वतंत्र हो), अथवा (२) बड़े संप्रदायके हाथों कोई ऐसा अन्याय होता आ रहा है जिसके कारण छोटे सम्प्रदायमें निराशासे उत्पन्न होनेवाला मर-मिटनेका भाव पैदा हो गया है । दोनोंका उपाय एक ही है—बड़ा सम्प्रदाय सत्याग्रहके सिद्धांतोंका अपने जीवनमें आचरण करे । वह अपने अन्यायको सत्याग्रही बनकर, चाहे जो कीमत चुकाकर भी दूर करे और छोटे संप्रदायके पशु-बलको अपनी कायरताको निकाल बाहर करके सत्याग्रहके द्वारा जीते ।

५ जब दो सम्प्रदायोंमें लड़ाई हो जाय तो सरकार या कानूनकी सहायता लेना जनताको निर्वीर्य बना देनेवाली बात है । भले ही दोनों जातियां एक-दूसरेका खून बहा लें और जब रक्तपातसे जी भर जाय तब शांति धारण करें, पर एक-दूसरेके खिलाफ फरियाद करने न दौड़ें । यह आदर्श स्थिति तो नहीं है, पर विदेशी सरकार या बाहरके लोगोंकी मददसे 'शांति' की रक्षा करानेसे तो यह अवस्था कम नुकसानदेह है ।

६ जबतक छोटे संप्रदायोंके मनमें बड़े सम्प्रदायोंकी नीयतके बारेमें शंका है तबतक बड़े सम्प्रदायको चाहिये कि वह छोटे सम्प्रदायको जमानत दे। यही उसे वशमें करनेका अच्छे-से-अच्छा उपाय है। जमानत देनेके मानी हैं जिन शर्तोंको स्वीकार कर लेनेसे उन्हें निर्भयता प्रतीत हो उन शर्तोंको अधिक-से-अधिक जितना स्वीकार करना संभव हो उतना कर लिया जाय।

७ अवश्य ही यह नियम वहीं लागू हो सकता है जहां छोटा संप्रदाय बड़े संप्रदायकी अपेक्षा प्रगतिमें पीछे हो। जहां छोटा सम्प्रदाय ही अधिक समृद्ध और बलवान हो वहां छोटा सम्प्रदाय बड़े सम्प्रदायसे अधिक या विशेष अधिकार पानेकी मांग नहीं कर सकता।

८ छोटे सम्प्रदायके पास यदि अधिक अधिकार, धन, विद्या, अनुभव आदि का बल हो और इस कारण बड़े सम्प्रदायको उससे डर लगता रहता हो तो उसका धर्म है कि शुद्ध भावसे बड़े सम्प्रदायका हित करनेमें अपनी शक्तिका उपयोग करे। *सब प्रकारकी शक्तियां तभी पोषण-योग्य समझी जा सकती हैं जब उनका उपयोग* दूसरेके कल्याणके लिये हो। दुरुपयोग होनेसे वे विनाशके योग्य बनती हैं और चार दिन आगे या पीछे उनका विनाश होकर ही रहेगा।

९. सार्वजनिक संस्थाओंमें कर्मचारियों, पदाधिकारियों आदिकी नियुक्तिमें सांप्रदायिक दृष्टिसे काम लेना उन विभागोंकी कार्य-कुशलताको नष्ट करनेका रास्ता है। इसके लिये तो जात-पात, धर्म इत्यादि किसी बातका विचार न करके, जो काम करता है उसकी योग्यता देखना ही नियुक्तिका सिद्धांत होना चाहिये।

१० ये सिद्धांत जिस प्रकार हिंदू-मुसलमान-सिख आदि छोटे-बड़े सम्प्रदायोंपर घटित होते हैं उसी प्रकार अमीर-गरीब, जमींदार-किसान, मालिक-नौकर, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर इत्यादि छोटे-बड़े वर्गोंके आपसके संबंधोंपर भी घटित होते हैं।

४

अंग्रेजोंके साथ सम्बन्ध

१. ब्रिटिश राज्यके साथ हिंदुस्तानका संबंध किस प्रकार का होना चाहिये

इसके निश्चयका अधिकार हिंदुस्तानकी जनताको है। जबतक यह अधिकार न हो, स्वराज्य मिल गया यह नहीं कह सकते।

२. इस अधिकार-सहित ब्रिटिश साम्राज्यके साथ हिंदुस्तानका संबंध बना रहे तो इससे पूर्ण स्वराज्यमें न्यूनता नहीं मानी जायेगी, क्योंकि उस स्थितिमें हिंदुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यके साथ समान अधिकार भोगता रहेगा, अर्थात् अपनी विशालता और महत्ताके अनुपातमें वह साम्राज्यके दूसरे अंगोंपर अपना प्रभाव डालता रहेगा।

३ हिंदुस्तान और ब्रिटिश साम्राज्यके बीच अगर ऐसा संबंध हो जाय और उसमें हिंदुस्तानकी नीति सत्य और अहिंसाकी पोषक रहे, तो ब्रिटिश साम्राज्य आजकी भांति जगतके लिये भयकी वस्तु न होगा बल्कि सब राष्ट्रोंको अभय देने-वाला हो सकता है।

४ पर यह स्थिति आनेके पहले हिंदुस्तानको लंबा रास्ता तय करना होगा। उसे अपनी शक्ति और संस्कृतिको पहचानकर, उसके प्रति वफादार रहकर, उस विषयकी अपनी साधना पूरी करनी होगी। जबतक वह निर्बलता और कायरताका सहारा लेता है तबतक यह असंभव है।

५ ब्रिटिश साम्राज्य आसुरी व्यवस्था है और उसका नाश होना ही चाहिये, यह ठीक है। पर ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटिश जाति एक चीज नहीं है। ब्रिटिश जातिमें जगतकी अथवा यूरोपकी दूसरी जातियोंसे अधिक दोष या कम गुण नहीं हैं। इस जातिमें अनेक आदरणीय और अनुकरणीय सद्गुण हैं और यदि आजके विषम संबंधके कारण हम उनकी कद्र न कर सकें तो इसे दुर्भाग्य ही समझना होगा।

६ स्वराज्य-भारतमें रहनेवाले अंग्रेज दूसरी अल्पसंख्यक जातियों-समुदायोंकी तरह रह सकते हैं। वे हिंदुस्तानकी दूसरी जातियोंकी भांति हिन्दुस्तानी बनकर देशकी सेवामें अपना भाग अर्पण कर सकते हैं और पिछले प्रकरणमें बताये हुए सिद्धांतोंके अनुसार देशकी दूसरी जातियोंके साथ उनका संबंध रहेगा। पर यदि वे परदेशी बनकर ही रहना पसंद करें तो हिंदुस्तानके हितके अनुकूल शर्तोंपर ही वे हिंदुस्तानकी नौकरी कर सकते हैं।

५
देशी राज्य

१ देशी राज्य आज अपने बलपर नहीं चल रहे हैं बल्कि ब्रिटिश राज्यके बलपर टिके हुए हैं। उन्हें यह डर लगा रहता है कि ब्रिटिश राज्य न रहे तो हमारी हस्ती भी न रहेगी। इसलिये वे ब्रिटिश राज्यको कायम रखने और उसके प्रति ब्रिटिश भारतकी प्रजासे भी अधिक वफादारी दिखाने की कोशिश करते हैं।

२ पर यह अधिक वफादारी अधिक गुलाम-दशाका चिन्ह है। इसके मूलमें शुद्ध भक्ति नही बल्कि भ्रम-भरा और गदा स्वार्थ है।

३ इसलिये देशी राज्योंकी प्रजाकी दशा दुहरी गुलामीकी है। जैसे गुलामीकी प्रथामें गुलामोंका मेठ मालिकसे भी अधिक कड़ाई करता है वैसे ही हमारे देशी नरेश अपनी प्रजाके प्रति अधिक कठोरता दिखाते है तो इसमे कोई नयापन नही।

४ इसका उपाय यही है कि ब्रिटिश भारत पहले स्वराज्य प्राप्त कर ले। जबतक ब्रिटिश भारतकी जनता स्वतत्र नही तबतक देशी राज्यकी प्रजाके संकट दूर करनेका सामर्थ्य उसमे नही आयेगा। अपने पुरुषार्थसे स्वतत्र होने से ब्रिटिश भारतकी जनतामें शक्ति पैदा होगी वह देशी राज्योंकी आंखें खोल देगी। उस समय देशी राजाओंकी समझमें आयेगा कि ब्रिटिश बन्दूकोंके बलपर अपनी प्रजाको दबाये रखकर थोड़ा अधिकार भोगने या मौज उड़ानेकी अपेक्षा निष्ठापूर्वक प्रजाकी सेवा करने, उसके सुख-दुख और गरीबीमें शरीक होकर प्रेमसे उसके हृदय पर अपनी सत्ता जमानेमें उनकी अपनी भी अधिक भलाई है।

५ जिन भारतीय नरेशोंकी आंखे इस तरह खुल जायगी वे खुद ही अपने राज्योंमें सुधार करने लग जायगे। जो इतने जड, नासमझ होगे कि उस समय भी न चेतेंगे उनके राज्य नहीं टिकने के—इसे कहने की आवश्यकता नही। पर ऐसे अहमति राजा भी तब आज-जैसी मनमानी तो हर्गिज न कर सकेंगे। क्योंकि स्वतंत्र हुए ब्रिटिश भारत तथा सुधरे हुए देशी राज्योंका एकत्र लोकमत इतना प्रबल होगा कि दुष्टोंके लिये भी अपनी दुष्टताको लगाम लगानेके सिवा दूसरा चारा न होगा।

६ पुरुषार्थी और स्वतंत्र प्रजाके शिक्षित लोकमतमें कितना अधिक बल होता है, सामाजिक व्यवहारमें हमें इसका अनुभव होनेपर भी आज हम इसे भूल गये हैं। पशुबलपर टिकी हुई सत्ताएं भी तभी तक अपने पशुबलका सहारा ले सकती हैं जबतक लोकमत प्रबल न हो। जहां लोकमतका जबर्दस्त प्रवाह है वहां बडी-से-बडी सल्तनतको भी झुके बिना काम नहीं चलता।

७ यह लोकमत कितना बलवान है इसका निदर्शक और कभी हार न देखनेवाला शस्त्र एक ही है, और वह सत्याग्रह है। अपने मतके लिये मर मिटनेवाली जनताके सामने बडे-बडे मुकुटधारियोंको भी झुके बिना चलता नहीं।

६

देशकी रक्षा

१ स्वराज्यमें भारतके पास देशकी रक्षा करनेका बल न होगा यह खयाल गलत है।

२ अहिंसा-धर्मको समझकर उसका ठीक-ठीक पालन करनेवाली जनताको देश-रक्षाके साधक-स्वरूप तोप, बन्दूक, जंगी बेडे आदिकी जरूरत ही न होगी। पर आज तो यह स्थिति कल्पनामें ही विद्यमान मानी जा सकती है।

३ फिर भी स्वातन्त्र्यप्राप्त और परराष्ट्रोंके साथ मेल-जोलसे रहने तथा उनके निर्वाहके साधनोंपर आक्रमण न करनेकी नीति बरतनेवाले हिन्दुस्तानको आजके जैसे और आजके जितने सैनिक साधनों और सेनाकी जरूरत न होगी।

४ स्वराज्यमें मर्यादा और बन्धनके अन्दर हर योग्य आदमीको हथियार रखनेकी इजाज़त रहेगी। दूसरोंके आक्रमणके खतरेमें ही इसका (स्वराज्यका) कारबार नहीं चलेगा। अतः वह इतनी सेना और साधन तो तैयार रखेगा ही कि अकस्मात आक्रमण या वैसी परिस्थितिमें हुए पहले हमलेको रोक सके और पीछे आवश्यक हो ही जाय तो देशको तेजीके साथ तैयार कर लेनेकी आशा रखेगा।

५ अगर हम जनताको इस तरह शिक्षा देनेका प्रबन्ध कर और उसमें सफल हो सकें कि देशके बहुतेरे काम-काज वह कानून और अधिकारियोंकी राह देखे बिना

स्वेच्छासे सावधान रहकर कर लेती हो, तो उस स्थितिमें देशमें ऐसे स्वयं-सेवकोंके मंडल होंगे जिनके जीवनका मुख्य कार्य ही होगा जनताकी सेवा करना और उसके लिये अपना बलिदान कर देना। ये ऐसे दल न होंगे जो केवल लड़ाई लड़ना ही जानते हों बल्कि प्रजाको तालीम देनेवाले और उसकी व्यवस्था, व्यवहार और सुख-सुविधाको सम्हाल रखनेवाले दल होंगे। देशपर कोई विपद आनेपर पहला वार वे अपने ऊपर लेंगे।

६ स्वराज्यमें अगर देशकी सेनासे जनताको खुद ही भयभीत रहना पड़े और उसीपर सैनिकोंकी गोलियां चलें तो वह स्वराज्य या रामराज्य नहीं बल्कि शैतानका राज्य होगा। सत्याग्रहीका धर्म उस राज्यका भी विरोध करना ही होगा।

७ देशका सिपाही प्रजाका मित्र हो, प्रजाकी आपत्तिके समय उसके लिये प्राण देनेवाला हो तो वह क्षत्रिय है, पर यदि वह प्रजाको डरानेवाला और शरीर या शस्त्रके बलसे उसे पीडित करनेवाला हो तो वह लुटेरा है। यदि राज्यकी ओरसे उसे आश्रय मिलता हो तो वह लुटेरोंका राज्य है।

खण्ड ६ : : वाणिज्य

१

पश्चिमी अर्थशास्त्र

१ पश्चिमका अर्थशास्त्र गलत दृष्टिबिन्दुओंसे रचा गया है इसलिये वह अर्थ-शास्त्र नहीं बल्कि अनर्थशास्त्र हो गया है।

२ वे गलत दृष्टिबिन्दु ये हैं—

(अ) उसने भोगविलासकी विविधता और बहुलताको संस्कृतिका प्राण माना है।

(आ) वह दावा तो करता है ऐसे अचल सिद्धान्त निकालनेका जो सब देशों और सब कालोंपर घटित होते हों, परन्तु वास्तवमें वह यूरोप के छोटे, ठंडे और खेतीके लिये कम अनुकूलतावाले देशोंके घनी आबादीवाले होते हुए भी मुट्ठीभर लोगोंकी अथवा बहुत थोड़ी आबादी वाले उपजाऊ बड़े खण्डोंकी परिस्थितिके अनुभवके आधारपर ही बना है।

(इ) पुस्तकोंमें भले ही निषेध किया गया हो, पर योजना और व्यवहार में वह (क) व्यक्ति, वर्ग या बहुत आगे बढ़े तो अपने नन्हे-से देशके ही अर्थ-लाभ को प्रधानता देनेवाली और उसके हितकी पुष्टि करनेवाली नीति ही अर्थ-शास्त्र का अचल शास्त्रीय सिद्धान्त है, यह मानने और मनवानेकी तथा (ख) कीमती धातुओं को हदसे ज्यादा महत्त्व देनेकी पुरानी लीकमें से आज भी नहीं निकल पाया है।

(ई) उसकी विचार-सरणिमें अर्थका नीति-धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है, इस कारण जीवनके अर्थकी अपेक्षा अधिक महत्त्वके विषयों को गौण समझनेकी आदत उसने जनतामें डाली है।

३ इसके फल-स्वरूप—

(अ) यह अर्थ-शास्त्र यन्त्रों, नगरों तथा (खेतीकी अपेक्षा) उद्योगोंका पोष-पूजक बन गया है।

(आ) इसने जनताके भिन्न-भिन्न वर्गों और भिन्न-भिन्न देशोंमें समन्वय स्थापित करनेके बजाय विरोध उत्पन्न किया है और सर्वोदय, सबके हितके बदले थोड़ेसे लोगोंका थोड़े समयके लिये ही लाभ किया है।

(इ) यह पिछड़े समझे जानेवाले देशोंमें आर्थिक लूट मचाकर तथा वहांके लोगोंको व्यसनमें फसाकर और उनका नैतिक अधःपात करके समृद्धिका रास्ता निकालना चाहता है।

(ई) इस अर्थशास्त्रको स्वीकार करनेवाली जनता पशुबलके भरोसे ही जीती है।

(उ) शास्त्रीय सिद्धान्तोंके नामपर इसके पीछे हुए वहम तथाकथित धार्मिक या भूत-प्रेतादिके अन्धविश्वासोंसे कम बलवान नहीं हैं।

२
भारतीय अर्थशास्त्र

१ और बातोंको अलग रखें तो भी हिन्दुस्तान अति विशाल देश है, इसकी आब-हवा विविध प्रकारकी है, इसकी जमीन तरह-तरह की है और हजारों वर्षोंसे जोती जाने तथा जनताकी गरीबीके कारण भी उसका उपजाऊपन घट गया है, इसकी जनता गिनतीमें कुल मनुष्य-जातिका पञ्चमांश है, वह छोटे-छोटे गावोंमें बटी हुई है, उसमें अनेक प्रकारकी—धर्म, संस्कृति, स्वभाव और रस्म-रिवाजोंकी विविधता है। ये स्थूल कारण ही भारतीय अर्थशास्त्रका विचार पश्चिमकी लीकसे निकलकर करने की आवश्यकता सिद्ध करनेको काफी है।

२ भारतीय अर्थशास्त्रकी विशेषतायें ये बताई जा सकती हैं—

(अ) उसका विचार गांवोंकी दृष्टिसे किया गया हो।

(आ) उसमें खेती और उद्योगका परस्पर निकट-सम्बन्ध हो, दोनों सामान्य रूपसे एक ही छप्परके नीचे रह सकते हों।

(इ) इस अर्थशास्त्रका विचार इस तरह किया गया होना जिससे विविध धर्मों, संस्कारों और स्वभावोंवाले लोगों में हित-विरोध, कलह और अनुचित स्पर्धा न पैदा हो।

(ई) अतः उन्हीं नीतियोंको दूर करके पर निवाहके साधनों तक पहुँचा कर सर्वोदय सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिये।

२

ग्राम-दृष्टि

१ हिन्दुस्तान गावोंमें बसा है, यह बात तो बारम्बार कही गई है, पर हिन्दुस्तान की सम्पत्ति-सम्बन्धी आजकी अधिकांश योजनायें गांवोंके हितकी दृष्टिसे नहीं बनाई गई हैं, बल्कि शहरों और विदेशोंके हितकी दृष्टिसे रची गयी है।

२ इसका नतीजा यह हुआ कि गावोंका कच्चा माल शहरमें पटता है और शहरोंके जरिये विदेश जाता है, और शहरों तथा विदेशोंमें बने पक्के मालसे गांवोंको पाटनेकी कोशिश की जाती है। इसकी वजहसे बहुत-सा कच्चा माल बेचकर मिले हुए थोड़े पैसे पीछे थोड़ा-सा पक्का माल लेनेमें खर्च हो जाते हैं और ग्रामवालोंका हाथ खाली-का-खाली रह जाता है।

३ इसके सिवाय जीवनके बहुतेरे साधन जो गांवके खेतों और जंगलोंमें लगभग मुफ्त मिल सकते हैं और जिन्हें एकत्र करके लोगों तक पहुंचाने से गरीबोंका सहजमें गुजारा हो सकता है उनके बदले शहरों और विदेशोंमें बना हुआ देखनेमें थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांशमें दिखावेके लिये ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काममें लाने का फैशन बढ़ जानेसे देहातके बहुतसे उद्योग और मजदूरीके धंधे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं।

४ ऐसा अधिक आकर्षक सामान तो आरोग्य और स्वच्छताकी दृष्टिसे हानिकर और गन्दा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है, इससे लोगोंको निकम्मी और खर्चीली आदतें लगा लेनें भरका काम होता है। मिसालके तौरपर—दातौनके बदले तरह-तरहके दन्त-मंजन, पेस्ट, टूथब्रश; गुड़ और घीकी शक्करकी जगह मिलकी सफेद दानेदार चीनी; लकड़ीकी सुतली या निवाड़से बिनी खाट या पलंगके बदले लोहेके पाइप या छड़के पलंग, खपरैलकी जगह टीन; सन, पटुए, मूंज आदिकी बान-रस्सियोंके बजाय तार और तारकी डोरियां; देहाती चटाइयोंके बदले चीनी और जापानी चटाइयां, गांवोंमें बांस या घासके बने हुए सूप, डौरे-डौरी, सिरकी आदिके स्थानपर

लोहेकी चादर के बने सूप, डब्बे आदि, देहाती लुहार या कसेरेकी बनायी जंजीर, कड़ियाँ, हत्थे आदिके बदले मशीनसे बने तार या पतर की वैसी ही कमजोर परन्तु आकर्षक चीजें, देहातके सुनारके बनाये गहनोंके एवजमें शहरोंमें मशीनसे तैयार किये हुए गहने, देहाती स्त्रियों द्वारा गूथे पंखे, कढ़े आसन, जाजिम, शाल आदिके बदले जापानी कागज के पंखे, मिलमें मशीनसे बने कामदार आसन, शाल वगैरा, रीठा, सिकाकाई इत्यादि प्राकृतिक वस्तुओंके बदले सुगंधित साबुन, नरकटके बदले तरह-तरहकी फाउंटेन और होल्डर पेन, और उनके फलस्वरूप देहाती रोशनाई के बदले रासायनिक रोशनाइयां, देहातके कागज की जगह मशीनके कागज, घरेलू ताजे काढ़े और अर्कोंके बदले तैयार दवाइयों की बोतलें, इत्यादि।

५ ये सब चीजें गांवकी वस्तुओंसे अधिक सस्ती पड़ती हों सो बात नहीं है। चीजोंकी मोहकता और धनवान पर अविचारी लोगोंके चलाये फैशनके अंधानुकरणमें सभ्यता मानने तथा लोगोंके भीतर जड़ जमा रखनेवाले आलस्य और जड़ताके कारण, अपनी आर्थिक स्थितिसे मेल न खाने पर भी, ये चीजें खरीदी जाती हैं।

६ फिर अविचारी यंत्रवादने भी देहातको कंगाल बनानेमें काफी बड़ा हिस्सा लिया है, जैसे, कपास लोढ़ने, आटा पीसने, चावल कूटने, तेल पेरने के कारखाने, मोटर, लारियां आदि।

७ इसके सिवा बीचके व्यापारियोंकी संकुचित और तुरन्त अधिक मुनाफा कमा लेनेकी स्वार्थ-दृष्टिने बहुतसे देहाती मालको, विदेशी और मशीनके मालकी अपेक्षा पड़तेमें महंगा न होते हुए भी, खरीदारके लिये महंगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहजमें देहातके हाथमें रह सकता है वह भी कारखानेवालों और विदेशियों के हाथमें चला गया है।

८ जब अर्थशास्त्र और जीवनमें ग्राम-दृष्टिका प्रवेश होगा तब देहातकी बनी चीजोंका अधिकाधिक उपयोग करनेकी ओर जनताका मन झुकेगा, अपने जीवनकी आवश्यक वस्तुयें देहातमें तैयार कराने की ओर उसका झुकाव होगा, इसके फल-स्वरूप देहातकी कला और औजारोंको सुधारने की, देहातके लोगों को सिखाने-पढ़ानेकी, देहाती जंगल और खेतों की पैदावार तथा उपयोग करनेके ज्ञान के अभावमें

देहातोंमें बेकार चले आनेवाले सम्पत्तिके अनेक प्राकृतिक साधनोंकी जांच-पड़ताल करनेकी प्रवृत्ति पैदा होगी।

९. आज सम्पत्ति देहातसे शहरोंमे होकर विदेश चली जाती है। इस प्रवाहको बदल देनेकी जरूरत है, जिससे देहाती सम्पत्ति देहातमें ही रहे और देहात स्वावलम्बी बनें, इतना ही नहीं बल्कि शहरवालोंकी आवश्यकताका अधिकांश माल भी वहीं प्रस्तुत करें।

४
धनेच्छा

१ मनुष्योंका बड़ा भाग आर्थिक स्थिति और सुख-सुविधाओंमें सुधार और बढ़ती कराना चाहता है, यह बात सामान्य रूपसे भले ही कही जाय, पर मनुष्योंकी धन या सुखकी इच्छा की कोई सीमा ही नहीं होती और सभी लखपति, जमींदार या राजा बनने अथवा बागों और महल-अटारियोंमें रहने को लालायित रहते हैं, सामान्य रूप से ऐसा कहना और इसके लिये दलील-सबूत देना साधारण मनुष्योंको न समझने, उनके बारेमें हलकी राय रखने और उनके सामने क्षुद्र आदर्श प्रस्तुत करनेवाली बात है।

२ जन-साधारणका बड़ा भाग धनको ठोकर भी नहीं मारता और उसकी अपार तृष्णा भी नहीं रखता। सालके आखीरमें दो पैसे बच रहें यह वे जरूर चाहते हैं—पर केवल इस विचारसे और इतने ही कि बीमारी, मौत, शादी-ब्याह या बुढ़ापेमें काम आये, अथवा पर्व-त्यौहार, यात्रा, दान-धर्मका काम चल जाय। धार्मिक संस्कारोंवाली जनता में धन तथा सुखकी तृष्णाको अमर्यादित न होने देनेका संस्कार थोड़ा-बहुत काम करता ही रहता है।

३ जैसे सब राजा न सिकन्दर या नैपोलियन बनने की और न भर्तृहरि या गोपीचन्द होनेकी हवस या उसके लिये पुरुषार्थ करनेका सामर्थ्य रखते हैं, वैसे ही करोड़ों मनुष्य न श्रीमान बननेकी और न निष्किंचन बनने की हवस या हिम्मत रखते हैं।

४ पर प्रत्येक जन-समाजमें कुछ लोगोंकी महत्वाकांक्षा और वैसे ही पुरुषार्थ

करनेकी शक्ति असाधारण होती है। ऐसे कुछ मनुष्य तो अकिंचन बननेका आदर्श रखते हैं और कुछ लाखों रुपये पैदा कर दिखानेका।

५ समाज की व्यवस्था और रचना ऐसी होनी चाहिये कि लोगोंकी आवश्यक सुख-सुविधा और धनेच्छाको धक्का पहुंचाये बिना ऐसे मनुष्योंको पुरुषार्थ करनेका उचित अवसर मिले, यही नहीं, इसके फलस्वरूप उनकी महत्वाकांक्षाका पोषण हो तो भी उससे अन्तमें समाजका लाभ ही हो।

६ यदि समाज-व्यवस्थामें ऐसे पुरुषार्थके लिये उचित अवसर न हो तो उनकी महत्वाकांक्षा उनके पुरुषार्थको गलत रास्ते ले जायेगी और समाज को हानि करेगी।

७ उद्योग-धंधे तथा समाज-सेवाके कितने ही कामोंमें अनेक प्रकारके साहस और जोखिम उठाने पड़ते है। उनकी सिद्धि संदिग्ध होती है और तत्सम्बन्धी प्रयोगों के लिये सार्वजनिक सभा-सोसाइटियोंकी अपेक्षा निजी रूपमें मनुष्य या निजी संस्थाएं अक्सर अधिक अनुकूल पड़ती हैं। समाज-रचना ऐसी होनी चाहिए कि इसके लिए अनुकूल हो।

५
व्यापार

१ व्यापारका उचित क्षेत्र आवश्यक बड़े उद्योगोंका विकास करना और जरूरी चीजें लोगोंके पास पहुंचाना है। इसमें अनायास जो बचत हो जाय उसीको मुनाफा कह सकते हैं।

२ अनायास होनेवाली बचत से मतलब है उद्योग या व्यापारमें जो कुछ खर्च पड़े उसे वस्तु पर फैलाते समय नुकसानकी जोखिम टालनेके लिए जो थोड़ी गुंजाइश (मार्जिन) रक्खी जाती है उससे होनेवाली बचत*। यह बचत फुटकर रोजगारमें तो बहुत मामूली होती है, पर बड़े पैमानेपर किये जानेवाले उद्योग-व्यापारमें कुल मिलाकर बड़ी होसकती है।

*उदाहरण—फर्ज कीजिए कि सारा खर्च जोड़नेपर एक गज खादीकी कीमत ०-५-१ होती है। तब नुकसानसे बचनेके लिये वह ०-५-३ रक्खी जाय तो २ पाई मुनाफा रहेगा।

३ इस प्रकार बढ़नेवाले धनका उपयोग उस उद्योगमें लगे हुये मजदूरों की भलाईमें, या उस उद्योग अथवा दूसरे उपयोगी उद्योगोंकी उन्नतिमें या सार्वजनिक हितके बड़े कार्य आरंभ करनेमें किया जाना चाहिए।

४ यदि ऐसे धनका मालिक अपनेको उसका रक्षक माने और उसका उपयोग इस रूपमें करना धर्म समझे तो पूंजीपति माने जाते हुए भी उससे जनता का हित होगा और वह ईर्ष्याका पात्र न बनेगा।

५ पर वह यदि इससे केवल स्वार्थ ही साधे और पैसा या वैयक्तिक सुख-भोग बढ़ानेकी दृष्टि रक्खे तो वह अपनेको तिरस्कारका पात्र बना लेगा और इसके फलस्वरूप मालिक-नौकरके बीच भेद-भाव बढ़ानेवाला और कलह उत्पन्न करनेवाला हो जाएगा।

६ यदि धनवान ऐसा व्यवहार रक्खे कि उसके बाग-बगीचे, बगले, महल गाड़ी-घोड़े, ठाठ-बाट, बरतन, दरी-गलीचे आदि उसके आधीन काम करनेवालोंको उनके व्याह-बरातके अवसरोंपर इस्तेमाल करनेको मिल सकें, यदि वह इस बातको अपना कुल-धर्म समझे कि उसके यहा पड़नेवाले ऐसे कामोको इस तरह पार लगा दे कि उनका मन प्रफुल्लित हो जाए और इसके साथ ही यदि गरीबोंका जीवन कष्टहीन हो तो धनीके अधिक सुख भोगनेसे गरीबोंको उसकी डाह न होगी; उलटे अधिकाश लोग तो उपभोगके साधनोंकी संभालके झंझटोंसे बचे रहना ही पसन्द करेंगे।

७. जहा धनीका ऐसा व्यवहार हो वहा मोटे हिसाब वह कह सकते हैं कि वह अपने धनका उपयोग रक्षवालेके रूपमें करता है। इसमें धन-लोभका सर्वथा अभाव नहीं है, पर वह जन-समाजका द्रोह किये बिना और आवश्यकताके समय काम आनेवाला धन-संग्रह है।

८ ऐसी सविवेक पूंजीवादी व्यवस्थाको नाश करने के लिए साम्यवादकी किसी दलीलके प्रभावमें आकर ही जनता तैयार न होगी।

९ इसके अतिरिक्त यदि धनी स्वयं सादा और संयमका जीवन बितानेवाला हो तो वह पैसेवाला माना जाते हुये भी जनताके लिये पूज्य हो जायगा।

६

साहूकारी

१ थोड़े व्याजपर रुपया लेकर अधिक व्याज उपजानेमें लगाना व्याज-बट्टा अथवा साहूकारी कहाता है। पर समाज-हितके लिए जो साहूकारी अनिवार्य है वह इस तरहकी नहीं है।

२. आज जिस प्रकारका व्याज-बट्टा दुनियामें चल रहा है वह या तो विदेशी व्यापारियोंकी दलाली या आढ़तका पेशा है, अथवा किसानों तथा दूसरे धंधे करनेवालोंकी जमीन-जायदाद और माल-मिल्कियत, या इससे भी आगे बढ़ें तो पर-राज्योंको धीरे-धीरे पचा जानेके खोटे उपाय है। यूरोप, अमेरिका-सरीखे देशोंमें भी अधिक व्याजके लोभने अपने देशके गरीबोंके हितकी उपेक्षा करके विदेशोंमें रुपया लगानेकी प्रवृत्ति पैदा करदी है। इससे धनी देशोंमें भी कष्ट बना रहता है।

३ रोजगारमें झूठ बोलनेमें दोष नहीं है यह मानना भयंकर अधर्मकी बात है।

४ अपढ़, भोले और विश्वासपरायन लोगों अथवा विलासलिप्त अमीरों या राजा-रईसोंको बुरे खर्चों और व्यसनोंमें पड़नेको प्रोत्साहित कर उन्हें कर्जमें फसाना, देन-लेनके व्यवहारमें उन्हें ठगना, झूठे बहीखाते और दस्तावेज बनाना साहूकारी नहीं बल्कि ज्वलन्त पाप और हिंसा है।

५. ऐसे अधर्म भरे व्याज-बट्टेके रोजगारसे अर्थ नहीं बल्कि अनर्थकी वृद्धि हुई है।

६ मनुष्यको अपनी बचतकी पूंजी किसी उद्योग-धंधेकी सहायतामें लगानी चाहिए। यह पहले स्वदेशमें ही लगनी चाहिए। उद्योगोंमें लगानेके बाद भी बचे तो सबसे पहले स्वदेशके सार्वजनिक हितके कामोंको बढ़ानेमें उसका उपयोग होना चाहिए। पूंजीको कायम रखकर उसके व्याजसे ही जनहितके कार्य होने चाहिए, यह विचार सदा सही नहीं होता। इस विचारके कारण पूंजीका अधिक-से-अधिक उपयोग करनेके बजाय अधिक-से-अधिक व्याज कमानेकी वृत्ति पैदा हुई है।

७. कौटुम्बिक कार्य ब्याजपर रुपया लेकर करनेकी मनाही होनी चाहिये। सामाजिक रस्म-रिवाजोंमें इस तरहका सुधार होना चाहिये कि वे कम-से-कम खर्चमें हो सकें। फिर भी बीमारी अथवा ऐसी दूसरी आपत्तियों या विवाहादिक अवसरोंपर रुपये की तंगी पड जावे तो वैसी सहायता समाजसे मित्रताके नाते बिना ब्याजके मिलनी चाहिए। घरेलू उपयोगके लिये दुकानदार उधार माल दे तो उसपर और ऊपर बताये हुए कौटुम्बिक कार्योंमें कर्जके रूपमें ली हुई सहायतापर भी ब्याज लेना गैरकानूनी समझा जाना चाहिए।

८ आजकल तो ऐसे कर्जोंपर अधिक ब्याज मिल सकता है, और इससे धनिकोंको उनसे लेन-देन रखनेवालोंको व्यसनों और फजूलखर्चीमें फसानेका प्रलोभन होता है।

९ दूसरी ओर मीयाद तथा नादारी-नादिहन्दगीके कानूनोंने जनताकी नैतिक भावनाका नाश करनेमें जबरदस्त हिस्सा लिया है। इनकी बदौलत दिवाला निकाल देने, सट्टेबाजी और लौटानेकी नीयत न रखते हुए कर्ज लेनेकी प्रवृत्ति आदिको उत्तेजन मिला है।

१०. इस तरहसे कर्जदार और साहूकारका सम्बन्ध चूहे-बिल्ली जैसा, अथवा एक-दूसरेको ठगनेकी कोशिश करनेवाले शत्रुओंका सा हो गया है। पुश्त-दर-पुश्त चले, एक-दूसरे का हित करे, जिसमें साहूकार ऋण लेनेवालेके उद्योग-धंधे बढ़ानेमें सहायता पहुचानेकी नीयत रक्खे और कर्जदार अपने पुरखोंका वाजिब कर्ज अदा करनेमें अपना कुल-गौरव समझे—इस प्रकारका सम्बन्ध नहीं रह गया है।

११. जो हालत कर्जदार और साहूकारकी हुई है वही नौकर और मालिककी हो गई है।

७

पूरी मजदूरी

१. मनुष्य चाहे जिस प्रकारका श्रम करे, यदि वह उसे दिये गये साधनों और तालीमका समुचित उपयोग ईमानदारीसे दिनके पूरे समय करता है तो उसे

हर कामके बदलेके रूपमें इतनी मजदूरी मिलनी या तय की जानी चाहिए जिससे उसका और उसके अवलम्बित आश्रितोंका गुजारा संतोषजनक रीतिसे हो जाय।

२. देहातके कामके साधनों, रहन-सहन आदिको ध्यानमें रखते और ग्राम-जीवनके दर्जेको जितना ऊपर ले जाना नितांत आवश्यक है उसका विचार तथा चीजोंके आजके भावका खयाल करते हुये आठ घंटे एक दिनकी मजदूरी का समय और घंटा पीछे एक आना मजदूरीकी आवश्यक दर मानी जानी चाहिए।

३ इस स्थिति तक एकबारगी पहुंचनेके लिए कदम उठानेकी भले ही हमारी हिम्मत न हो, पर इस दिशाको ध्यानमें रखकर हमें सतत प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

४ आदर्श स्थिति और वर्ण-धर्मकी संपूर्णता तो तब समझी जायगी जब सब धंधे करनेवालोंकी आमदनी एक-सी हो। पर इसकी संभावना आज निकट भविष्यमें नहीं दिखाई देती। इसलिये इस आदर्शको ध्यानमें रखकर जहां तक जाया जा सके वहां तक उत्तरोत्तर बढ़नेकी नीति स्वीकार की गयी है।

८

मजदूरके प्रश्न

१ जीवन-विषयक गलत दृष्टिकोणोंने मजदूरोंके प्रश्नको उलझा दिया है।

२ वे गलत दृष्टिकोण ये हैं—

(अ) मनुष्य अवकाश-ही-अवकाश चाहता है और कामको बेगार समझता है।

(आ) मनुष्यके आध्यात्मिक विकासके लिये अवकाशकी ही आवश्यकता है, शारीरिक श्रम उसका विरोधी है।

(इ) कम-से-कम काम करके अधिक-से-अधिक सुख प्राप्त करना श्रम-विभागका ध्येय है।

(ई) मालिक और मजदूरके स्वार्थ एक-दूसरेके विरोधी हैं।

३ उपर्युक्त कारणोंसे मजदूरोंमें नीचे लिखे गलत आदर्श फैलानेका प्रयत्न किया जाता है—

(अ) खूब यांत्रिक सुधार करके, दो या चार घंटेके श्रमसे ही जीवनकी आवश्यकताएं पूरी कर लेनी चाहिए।

(आ) पूंजीपतिका नाश करना है।

४ ये आदर्श शायद कभी सिद्ध हो जायें, पर इससे मानव-जातिको सुख ही मिलेगा इसका निश्चय नहीं है।

५ वास्तवमें मजदूरोंके, या यों कहिए कि अधिकांश जनताके सुखके लिये नीचे बताई दृष्टिसे विचार करना चाहिए।

(अ) मनुष्यको बाह्य साधनोंका इतना अधिक मुहताज नहीं बना देना चाहिए कि उसकी श्रम करनेकी स्वाभाविक शक्तिका ह्रास हो जाय और वह श्रमसे निर्वाह करनेके अयोग्य बन जाय।

(आ) अत मनुष्यकी शारीरिक श्रम करनेकी शक्ति बढ़नी चाहिए, और कामके घटे, मजदूरके खान-पान तथा घरबार आदिकी सुविधाओंका विचार उसकी शक्तिकी रक्षा करने और बढ़ानेकी दृष्टिसे किया जाना चाहिए।

(इ) अत्यत सूक्ष्म श्रम-विभाग करके मजदूरको जड यत्र जैसा बना देकर दो-चार घटेकी नीरस यांत्रिक क्रियामें उसे जोतना और फिर मौज-चैन या शौककी बातोंके लिये छोड देना, इससे मनुष्य जातिका कल्याण न होगा। बल्कि उद्योग-धंधों की व्यवस्थाके ऐसे रास्ते ढूढने चाहिए जिनसे उसे अपने करनेके काममें ही आनन्द आये, वही उसके शौककी चीज बन जाय और उसीमें वह अपना आध्यात्मिक विकास भी कर सके।

(ई) इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्यको अपने धंधे-व्यवसायके सिवा और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है, और न फुर्सतकी ही जरूरत है। हर आदमीको कोई निर्दोष शौक भी होना चाहिए और उसके लिए उसे फुर्सत भी मिलनी चाहिए; पर उसका स्थान गौण ही रहना चाहिए। अभी तक ऐसी संस्कारिताका प्रसार नहीं हो पाया है जिससे मानव-समाजका बड़ा भाग अवकाशका समय उचित रीतिसे बिता सके। आज तो उस बड़े भागकी अधिक फुर्सतका समय नींद, व्यसन और दोषमय भोगोंमें ही बीतनेका डर है।

(उ) मनुष्यको जो अपने गुजरके लिए कठिन श्रम करना पड़ता है, यह प्रकृतिका कोप नहीं बल्कि अनुग्रह है। ऐसा श्रम करनेका सामर्थ्य बढ़े यह ध्येय होना चाहिए, श्रम न करना पड़े यह नही।

(ऊ) यदि मालिक मजदूरोंका व्यवस्थापक बनकर उनसे उनकी शक्तिभर ही काम ले और पूरी मजदूरी तथा सुख-सुविधाका प्रबन्ध करदे और मजदूर मालिकके कामको अपना समझकर उसमें मन लगाकर मेहनत करे तो इसमें दोनोंका हित सधेगा।

(ए) इसके लिये निजी पूंजीका होना-न-होना अधिक महत्वका प्रश्न नहीं है बल्कि उद्योग और वाणिज्यका लक्ष्य बदल देनेकी जरूरत है।

(ऐ) उद्योगका लक्ष्य व्यापार बढ़ानेके लिये नयी-नयी जरूरतें खड़ी करना नही है, बल्कि जो आदतें और जो जरूरतें पैदा हो चुकी हैं उनकी अच्छे-से-अच्छे ढंगसे पूर्ति कर देना भर है। व्यापारका भी इतना ही प्रयोजन है। ऐसा करते हुए कितनी ही नयी आवश्यकताएं पैदा होनेकी सभावना अवश्य है, लेकिन यह ध्येय ध्यानमें रक्खा जाय तो वाणिज्य पिछड़ी जातियोंकी आवश्यकताएं बढ़ानेके लालचमें न पड़ेगा और उन्हें चूसनेकी नीति न अपनायेगा। ऐसा होनेसे मजदूर और मालिक अन्योन्याश्रित बनकर रहेंगे।

(ओ) ऐसा ध्येय न रहनेपर पूंजीपतिके रूपमें व्यक्तिके बदले जड़तंत्र मालिक बनेगा, अथवा एक राष्ट्र मालिक और दूसरा राष्ट्र मजदूर बनेगा। इससे मनुष्यका सुख बढ़ेगा नही।

९

स्वावलंबन और श्रम-विभाग

१ स्वावलंबनका अर्थ श्रम-विभागका विरोध नही है और न दूसरे देशोंके साथ औद्योगिक सम्बन्धका अभाव है। समाजमें रहनेवाले लोग संपूर्णरूपसे स्वावलंबी हो सकें, अर्थात् अपनी प्रत्येक आवश्यकता अपने ही श्रमसे पूरी कर लें, यह शक्य नही। ऐसा प्रयत्न मिथ्या अहंकार और मिथ्या प्रयासका रूप ले सकता है। सारे जगतके

साथ प्रेम और अहिंसा द्वारा एकरूप होनेका आदर्श रखनेवाला स्वयं-पर्याप्त (self-sufficient) होनेका झूठा मोह नहीं रखेगा।

२ तथापि मनुष्य अपनी जितनी जरूरतें और जितने काम खुद आसानीसे पूरी करले या निपटा सकता है और जिनके लिये प्राकृतिक अनुकूलताएं भी हों उनमें स्वावलम्बी रहना दोष नहीं बल्कि उचित है। उसे इनके लिए दूसरेसे काम लेना ही चाहिए और उसके लिये रुपये-पैसेके लेन-देनका सम्बन्ध कायम करना ही चाहिए, यह धर्म नही है। मिसालके तौरपर मनुष्यको अपने कपडे धोबीसे ही धुलाने चाहिए, पाखाना भंगीसे ही साफ कराना चाहिए, हजामतके लिए नाईको ही बुलवाना चाहिए, या खाना वासेमें जाकर ही खाना चाहिए—यह फर्ज नहीं कहा जा सकता।

३ यही नियम देश और जनताके व्यवहारोंमें भी घटित होता है। हिन्दुस्तान जैसा देश जिसमें काफी अनाज और रुई पैदा होती है, अन्न और वस्त्रके मामलेमें स्वावलम्बी बन जाय तो यह नही कह सकते कि वह स्वयं-पर्याप्त बननेका मिथ्या प्रयत्न करता है या दूसरे देशोंके साथ औद्योगिक सम्बन्ध नहीं रखना चाहता।

४ इसी तरह जिन उद्योगोंके विकासके लिये भारतवर्षमें प्राकृतिक अनुकूलताए है उन उद्योगोंके विकासके उपाय वह करे तो इसमें कोई दोष नहीं। ऐसी आर्थिक नीति अपनाये बिना राष्ट्रको सुखी बनानेकी आशा रखना बेकार है।

५ भारतका अनाज विदेश भेजकर वहांसे रोटी मगाकर खाना, यहांसे तेलहन या मूगफली भेजकर वहासे तेल पेरवाकर मगाना, रुई भेजकर कपड़ा मंगवाना और इस पद्धति को देशातर (अतर्राष्ट्रीय) श्रम-विभाग और देशातर-सहयोगका नाम देना, अथवा लकाशायर जैसे परगनेमें लोहे और कोयलेकी खानें हैं और वहां की हवा नम है इसीलिये यह कहना कि कपड़ा बनानेकी वहीं अनुकूलता है, श्रम-विभाग और सहयोग-तत्वका दुरुपयोग है।

१०

राजनीतिक स्वदेशी

१ हरएक देशकी आर्थिक नीति यही होनी चाहिए कि जहां कच्चा माल

हो वहीं उससे संबंधित उद्योग चलानेके कारखाने हो। आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे इसीको 'स्वदेशी आन्दोलन' कहते हे।

२ कच्चे मालका विदेश जाना और वहासे चीजोकी शक्लमें फिर स्वदेश लौटना आर्थिक दृष्टिसे लाभजनक प्रतीत होता हो तो बहुत सभव है कि उसके मूल में स्वदेशमें या विदेशमें कोई अन्याय या अधर्म हो अथवा हिसाब लगानेमें कहीं-न-कहीं भूल हो रही हो।

३ इंगलैण्डने जिसे 'फ्री ट्रेड' अथवा मुक्त द्वार व्यापारका नाम दे रक्खा है वह वास्तवमें वैसा व्यापार नही है, क्योंकि वह अपने उद्योगोकी रक्षा तथा दूसरे देशोंके उद्योगोंको मटियामेट करनेके लिये जकातका नही बल्कि सैनिक-बल, राजनीतिक शक्ति और कुटिल नीतिका उपयोग करता है। स्वदेशीकी नीतिका यह अधम और अन्यायी रूप है।

४ आर्थिक दृष्टिसे स्वदेशी और बहिष्कारमें भेद नही है। जिस चीजपर करोडोका जीवन अवलबित हो वैसी वस्तु विदेशोंसे कदापि नही लाने दी जा सकती। अर्थात् उसका बहिष्कार करना ही पडेगा। यह बहिष्कार किसी खास देशके नही, बल्कि सब विदेशोके विरुद्ध होगा, इसलिए यह 'स्वदेशी' ही है।

५ देश-विशेषके खिलाफ चलाया गया बहिष्कार राजनीतिक दृष्टिसे किया जाता है, इसलिए उसका विचार इस प्रकरणमें करनेकी आवश्यकता नही।

११

यान्त्रिक साधन

१ भारतीय अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे यांत्रिक साधनों तथा उनम किये जानेवाले सुधारोंके दो भाग किये जा सकते हैं— (१) वे यंत्र और उनके सुधार जो मुख्यत इस दृष्टिसे बनाये या किये गये हों कि श्रम करनेवाले मनुष्य या पशुके स्नायुओंको थोड़ा कम श्रम पडे और उनका थोड़ासा समय बच जाय, जैसे हॅकुल, चक्की, चरखा, साइकिल, सीनेकी कल, पटल, करघा, गाड़ी इत्यादि, तथा उनमें घिसाई आदिके दोष (Frictions) कम करनेके लिए किये गये सुधार, जैसे छर्रेवाले चक्कर (बाल

सिंचाई), पक्की सड़कें, रेलकी पटरी इत्यादि। (२) ऐसे यंत्र जो श्रम करनेवाले मनुष्य-या पशुका स्थान ग्रहण करनेके लिए अर्थात् मजदूर या पशुकी संख्या घटानेके लिए, अथवा मजदूरोंकी बुद्धि-चातुरी या शरीर-बलका उपयोग करनेके बदले उनका केवल जीवित यन्त्रके तौरपर इस्तेमाल करनेके लिए बनाए जायें, जैसे, आटा पीसने की मिल, चावल कूटनेकी कल, तेल पेरनेकी कलें, शक्करके कारखाने, सूत और कपड़े-की मिलें, मोटर, रेलगाड़ी इत्यादि माल ढोनेके साधन, मशीनका हल (ट्रैक्टर), भाप या बिजलीसे चलनेवाले पानीके पम्प, सूक्ष्म श्रम-विभागके फल-स्वरूप बने यन्त्र इत्यादि।

२ पहले प्रकारके यान्त्रिक साधन और उनमें होनेवाले सुधार सामान्यत इष्ट हैं। उनसे भी मजदूर या पशुकी सख्या घट सकती है, पर कम-से-कम बढ़ेगी।

३ दूसरे प्रकारके यान्त्रिक साधनो और सुधारोका उपयोग करनेमें विवेक और सावधानी रखनी होगी। अर्थात् ऐसे साधनों और सुधारोका कौन कितना उपयोग करे इसपर जनताकी सरकारका वैसा ही नियत्रण रहना चाहिए जैसा शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद बनाने और इस्तेमाल करनेपर रहता है।

४ दूसरे प्रकारके यत्रोका व्यवहार किस परिस्थितिमें दोषरूप नही समझा जा सकता इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(अ) जहा काम बहुत और करनेवाले थोड़े हो और अधिक आदमी मिलना या रखना कठिन हो, जैसे, जहाजपर।

(आ) जहां आकस्मिक अड़चनकी वजहसे अथवा दूसरे कारणोंसे कामका प्रकार ही ऐसा हो कि उसे जल्दी-से-जल्दी निपटानेकी जरूरत हो और यांत्रिक साधनोंके बदले अधिक आदमी बटोरनेसे अव्यवस्था, देर लगने और खतरा बढ़नेकी सभावना हो, जैसे, आग बुझाना, अकाल या अन्य प्राकृतिक विपत्तियोंसे लोगोंकी रक्षा करना, अथवा अनाज आदिकी सहायता पहुंचाना।

(इ) जो यत्र और उनके सुधार सहायक धंधा दे सकते हों अथवा वैसे धंधेको अधिक अच्छी स्थितिमें ला सकते हों, फिर भी उसके सहायकपनका नाश करने-वाले न हों, जैसे, ज्यादा काम देनेवाला चरखा, रस्सी बटनेका यन्त्र, इत्यादि।

(ई) पहले प्रकारके कल-पुर्जे बनानेके यंत्र, औजार आदि बनाना, खास करके जहां जहां एक ही माप और एक ही ढगके यन्त्र अथवा उनके पुर्जे बनानेका महत्व हो;

(उ) जहां बिलकुल सही काम देनेवाले सूक्ष्म साधनोंकी आवश्यकता हो, जैसे कि घडी, टाइपराइटर, प्रयोगशालाके उपकरण आदिके बनानेमें,

(ऊ) ऐसी वस्तुओंके बनानेमें जिनमें जनताका बडा भाग कभी लगाया नहीं जा सकता पर जिनका उपयोग सार्वजनिक हो, जैसे, नलके पाइप, टोंटिया और कांचके घरेलू बरतन इत्यादि।

(ए) व्यक्तिगत साहससे नही बल्कि राज्यकी ओरसे अथवा उसके नियत्रणमे, चलनेवाले उद्योगोंमें, जैसे, रेलगाडी, जहाज, महत्व की खानें, मिट्टी-के तेलके कुए आदि।

५ जिस हदतक दूसरे प्रकारके यांत्रिक साधनोंवाले उद्योग आवश्यक समझे गये हों उस हदतक उनसे सबध रखनेवाले कारखाने भी आवश्यक समझे जायेंगे, जैसे लोहा, औजार, मशीनें, कांच, बिजली, इत्यादिके उद्योग और इनके लिए आवश्यक साधन बनानेके कारखाने।

१२

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

१ जो चीजें अपने देशमे न बनती हो, बनानेके लिए प्राकृतिक अनुकूलताएं भी न हों, अथवा ऐसी हो कि बडे कष्टसे या दूसरे राष्ट्रकी जनताकी भारी हिंसा करके ही उत्पन्न की जा सकती हो, जिन्हे बनानेकी कला वहांकी जनताने अतिशय परिश्रमसे हस्तगत की हो और उसकी कमाईपर उनका जीवन बहुत अधिक अवलम्बित रहा हो, जिसका जीवनमें इतने महत्वका उपयोग न हो कि उसके बिना करोडोंकी जीवन-यात्रा कठिन हो जाय, अथवा महत्वका उपयोग हो तो भी नित्यके जीवनमें उपयोग न हो और सामान्य मनुष्योंका जीवन तो उनके बिना ही चलता हो, ऐसी चीजोंका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हो सकता है।

२. ऐसे व्यापारके चलानेमें किसी भी तरहकी जोर-जबर्दस्ती, हिंसा, राजनीतिक अधिकारके दबाव वगैराका उपयोग न होना चाहिए।

३. ऊपर बतायी वस्तुओंको जैसे भी हो सके स्वदेशमें उत्पन्न करनेका आग्रह अधर्म भी हो सकता है।

४. प्रयोगशालाओंमें काम आनेवाले कितने ही साधन, एक्सरेका यन्त्र, विशेष प्रकारकी घड़ियां, केसर, काश्मीरी ऊनी कपड़े, इलायची, दालचीनी इत्यादि विशेष प्रकारकी वनस्पतियां वगैरा चीजें इस प्रकारकी मानी जा सकती हैं।

खण्ड ७ : : उद्योग

१

खेती

१ खेती हिन्दुस्तानका प्राणरूप धंधा है। भयंकर लूटके जारी रहते हुए भी हिन्दुस्तान जो अबतक जीवित रहा है उसका कारण यह है कि भोजनके मामलेमें अभी वह परावलंबी नहीं बना है। पर यह स्वावलंबन भी अब खतरेमें नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।

२ हिन्दुस्तानकी आर्थिक और राजकीय नीति खेतीके उद्योगको नष्ट कर रही है। उसके परिणाम-स्वरूप खेती आज कमाईका धंधा नहीं रह गयी है।

३ ब्रिटिश शासन-व्यवस्थामें मालगुजारीकी वसूली कानूनन जमीनपर पहला बोझ है। स्वराज्यमें इसका उलटा होना चाहिए। यानी खेतीकी तरक्की राज्य पर पहला बोझ होना चाहिए और मालगुजारी वगैरा सारे कर इस तरह लगाए जाने और वसूल होने चाहिए कि खेतीको हानि न पहुंचे।

४ देशके लिए आवश्यक धान्यका संग्रह सदा रहे, स्वराज्यकी आर्थिक नीति इस तरह बनायी जानी चाहिए

५ हिंदुस्तानमें फलवाले वृक्षके उत्पादनपर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए उतना नहीं दिया गया है। इस ओर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए।

६ खेतीकी तरक्कीके लिए गोचर-भूमिकी सुविधा भी आवश्यक है। खेती तथा जंगल-विभागकी नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे लोगोंको गाय-भैंस रखनेका प्रोत्साहन मिले और उनकी खुराकके लिए खास किस्मके चारेकी खेती भी होना चाहिए।

७. खेतीकी भांति ही सब उद्योगोंके विषयमें उद्यमकी वर्तमान दृष्टि ही भूलसे भरी हुई है। मालगुजारी, कर, कर्ज आदि चुकानेकी चिंता मनुष्यको न हो तो

अवसे वह जो चीजें निर्माण करता है उनमें यह दृष्टि न रखेगा कि क्या बेच कर वह अधिक-से-अधिक दाम पा सकेगा, बल्कि इस दृष्टिसे उद्यम करेगा कि उसे और उसके कुटुम्बको अथवा उसके ग्राम या समाजको किस चीजकी कितनी जरूरत होगी।

८ इस तरह उसकी पहली चिंता यह होगी कि उसके पास अनाज और चारा यथेष्ठ मात्रामें रहे, केवल ऊंचे भावोंपर नजर रखकर रुई, तेलहन, तंबाकू आदिके ढेर पैदा करनेका प्रयास वह न करेगा।

९ ऊंचे दाम पानेके लोभसे होनेवाली 'व्यापारिक खेती' से अतमें किसानको अधिक लाभ तो होता ही नही, एक ओरसे आया हुआ पैसा दूसरी ओरसे चला जाता है, पर इससे नैतिक हानि बहुत बडी होती है। यह विचार करनेकी कर्तव्य-बुद्धि ही नष्ट हो जाती है कि हम जो चीज उपजाते हैं उससे हमारे अपने तथा दूसरे देशोकी जनताकी भी शारीरिक, मानसिक और नैतिक हानि कितनी होती है। तबाकू, अफीम आदिकी खेती इसकी मिसालें हैं।

२

सहायक उद्योग

१ हिंदुस्तानमे खेतीके लिए बहुतेरे कुदरती खतरे हैं। उनसे बचते रहनेके उपाय करते रहनेपर भी बहुत अशोमें यह स्थिति रहेगी ही। दूसरे यह बारहमासी धंधा नहीं हो सकती। खेतीके मौसममें भी इसमें एकसी मेहनत नहीं करनी पड़ती। खास-खास मौकोंपर इसमें बहुतसे आदमियोंकी जरूरत पड़ती है और बाकीके दिनोंमें मालिक और उसके घरके लोग भी बेकार रहते हैं। अतः हिंदुस्तानमें खेती और उद्योग एक-दूसरेसे बिल्कुल अलग नहीं किये जा सकते। बल्कि खेतीके साथ कोई भी दूसरा सहायक धंधा अवश्य होना चाहिए।

२ सहायक धंधेमें नीचे लिखी अनुकूलताएं होनी चाहिएं—

(अ) वह मुख्य धंधा अर्थात् खेतीके अनुकूल पड़नेवाला होना चाहिए—उसके लिए खेती बिगाड़नी पड़े ऐसा नहीं होना चाहिए।

(आ) अतः वह धंधा ऐसा होना चाहिए कि मुख्य धंधेके लिए मेहनत की जरूरत पड़ते बिना किसी नुकसानके समेट लिया जा सके अथवा उधर ध्यान दिये बिना उसका काम चलता रहे।

(इ) इसके सिवा इस धंधेका रूप नौकरीका नहीं बल्कि स्वतंत्र श्रमका होना चाहिए।

(ई) इन्हीं कारणोंसे उस धंधेमें यंत्र अथवा मालके लिए इतनी पूंजीकी आवश्यकता न होनी चाहिए कि वह निर्धन जनता के सामर्थ्य के बाहर हो।

(उ) वह ऐसा हो कि खेतके नजदीक ही अर्थात् अपने घर या गांवमें किया जा सके।

(ऊ) करोड़ो जनोंको उसे अपनानेकी सलाह देनी हो तो यह धंधा ऐसा होना चाहिए कि उसका माल आसानीसे खप जा सके, अर्थात् वह सार्वजनिक उपयोगकी वस्तु हो।

(ए) उसी तरह करोड़ोंकी दृष्टिसे इस धंधेकी व्यवस्था करनेके लिए यह भी आवश्यक है कि उसका प्रबन्ध झटपट, आसानीसे और थोड़े खर्चमें किया जा सकता हो।

(ऐ) फिर, करोड़ोंकी दृष्टिसे वह ऐसा भी होना चाहिए कि अपढ़, थोड़े बुद्धिके, कमजोर, छोटे-बड़े सब तरहके मनुष्योंसे हो सके।

(ओ) तथापि वह ऐसा न होना चाहिए कि कारखानेकी तरह वह धंधा मनुष्यको—कामके बीचमें—जड़ यंत्रकी भांति, आनंदरहित और रसहीन बना दे और—कामके बाद—ऊब और थकान पैदा करदे।

३ इन सहायक उद्योगोंमें चरखा और गोपालन प्रधान हैं। ये दोनो धंधे प्राचीन कालसे खेतीके साथ ही जुड़े हुए हैं, और दीर्घकालीन अनुभवकी कसौटीपर कसे जा चुके हैं।

४. जैसे तार, डाक, रेल, अखिल भारतीय विभाग समझे जाते हैं वैसे ही चरखे और गोपालनका महत्त्व अखिल भारतीय है। बड़े पैमानेपर तथा अधिक-से-अधिक लोगोंको आसानी और सुभीतेसे काममें लगा सकनेवाले यही धंधे हैं।

५. इन दोनों धंधोंका विशेष विचार पृथक् प्रकरणोंमें होगा। पर गोपालनकी तुलनामें चरखेका महत्व इस दृष्टिसे अधिक है कि गोपालनका धंधा थोड़ी-बहुत जमीन और पूंजीकी अपेक्षा रखता है, इसलिए वह अपनी निजकी जमीन रखनेवाले किसानका ही सहायक धंधा बन सकता है। पर उन लाखों लोगोंके उतना अनुकूल नहीं है जो केवल खेतीकी मजदूरीपर ही गुजर करते हैं। दूसरे, गोपालन खेतीसे अलग स्वतन्त्र धंधा भी हो सकता है और चरखा इन दोनोंके साथ चल सकता है। इसी तरह गोपालन और चरखा दोनों एक साथ भी किसानके सहायक धंधे हो सकते हैं।

६ चरखेपर जोर देनेमें, यह आशय नहीं है कि उसके सिवा दूसरा कोई सहायक धंधा न होना चाहिए। स्थानिक परिस्थिति अनुकूल हो और चरखेसे अधिक लाभजनक दूसरा सहायक धंधा वहां चल सकता हो तो चरखेके बदले या उसके अतिरिक्त उसके लिए भी जगह है। स्थानीय अधिकारियों और लोकल-जिला बोर्ड आदिका फर्ज है कि उसपर ध्यान देकर उसे बढ़ावें-फैलावें।

७ इस विषयमें मोटे हिसाबसे यह कहा जा सकता है कि जिस गांवमें जो कच्चा माल पैदा होता है उसे जमा करने, बेचने और काममें लाने योग्य बनानेके लिए जिन क्रियाओंकी जरूरत हो वे क्रियायें भी वहीं, अर्थात् कच्चा माल पैदा करने-वालेके यहां ही होनी चाहिएं। जैसे विदेश अथवा शहरमें धान नहीं जाता पर चावल जाता है और वही खाया जा सकता है। गेहूंके स्थानपर आटा भी बड़ी मात्रामें जाता है और उसकी बनी रोटी, बिस्कुट आदिकी खपत भी अच्छी है। गन्नेका गुड़ या शक्कर बनाकर ही काममें लायी जा सकती है। तेलहनका तेल ही इस्तेमाल हो सकता है, कपासका उपयोग कपड़ेके रूपमें ही होता है। चमड़ा कमाकर उससे बननेवाली तरह-तरह की चीजें ही काममें आती हैं। इसलिए धान कूटने, आटा पीसने, रोटी-बिस्कुट, गुड़-शक्कर बनाने, तेल पेरने, कपड़ा बुनने और चमार, मोची वगैरह के धंधे देहातमें ही चलने चाहिए, और ये भी धंधे किसान या ग्रामवासीके सहायक उद्योग हो सकते हैं। ऐसे दूसरे अनेक धंधे भी गिनाये जा सकते हैं।

८ ऐसे धंधे सहायक उद्योगके तौरपर चलें तो किसानको बहुत तरहके

काम हो सकते हैं, जैसे, धानकी भूसी, गेहूंका चोकर, ईखके छिलके और पत्ते, तेहलन की खली, बिनौले, सूतका फुचड़ा वगैरा पशुओंके काम आ सकते हैं। उनकी खाद बन सकती है या उनसे दूसरे धंधे भी किये जा सकते हैं।

३

'सौ फीसदी स्वदेशी'

१ स्वदेशी मालको प्रोत्साहन देनेकी जरूरत है। स्वदेशी धर्मके पालनमें ही यह बात आ जाती है। पर स्वदेशी मालको प्रोत्साहन देनेके उद्देश्यसे जो आंदोलन चलाया जाय उसमें बहुत विवेकसे काम लेनेकी जरूरत होती है।

२ ऐसे विवेकके अभावमें स्वदेशीके नामसे एक प्रकारका पाखंड जाने-अनजाने चलता है, बहुतेरे कार्यकर्ताओं की शक्ति व्यर्थ जाती है और आत्म-प्रतारणा होती है।

३ जिस चीजके प्रचारके लिए खास तौरसे सहायता करनेकी या जिसे विज्ञापनकी जरूरत नही है वैसी वस्तुके लिए सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको प्रदर्शनी करने की आवश्यकता नहीं है, कारण यह कि इससे भाव ऊंचे हो जाते हैं। और एक दूसरेके साथ स्पर्धा करनेवाले सपक्ष व्यापारियोंमें अनिष्ट तनातनी बढ़ जाती है।

४ मसलन कपड़े, शक्कर या चावलकी मिलोंको ऐसी सहायताकी जरूरत नहीं मानी जा सकती। यही न्याय बहुत अंशोंमें कागजकी देशी मिलों, तेलकी मिलों, विलायती दवाओंके देशी कारखानों, साबुनके कारखानों, चमड़ेके बड़े कारखानों वगैरापर घटित होता है।

५ इसका अर्थ यह नही कि विदेशी कपड़ा, चीनी, चावल, कागज, तेल, दवाइयां, साबुन, दंत-मंजन, ब्रुश आदि इस्तेमाल करनेमें हर्ज नहीं है। विदेशी वस्तुओंके सामने टिकनेकी शक्ति उनमें न हो तो उन्हे पूरी-पूरी मदद मिलनी चाहिए और जिन्हें ये चीजें इस्तेमाल करनी ही हों उन्हें इन्हींको तरजीह देना चाहिए।

६ पर जिनके लिए आज स्वदेशी-आंदोलनकी जरूरत है वे ये वस्तुएं नहीं हैं। जरूरत तो आज ग्राम-उद्योगोंका संरक्षण करनेकी है, अर्थात् खादी, गुड़,

देहाती शक्कर, हाथकुटा चावल, देहाती कागज, बैलके कोल्हूका तेल, देहाती मसाले, रीठा, सिक्का, दतौन, देहाती झाडू, चटाई, टोकरियां, रस्सी, जाजिम, चमड़ेकी चीजें आदि देहातके सैंकड़ो उद्योग जो प्रोत्साहनके अभावमें मर गये या मृतवत् जीवित है उनका संजीवन करनेकी।

७ इस बारेमें शहरातियो और पढ़े-लिखोंने देहातके प्रति अक्षम्य लापरवाही दिखाई है।

८ कुछ साल पहले देहातके लोग अपने रोजमर्राके इस्तेमालकी चीजें तो खुद बना लेते ही थे, छोटे कस्बोंके रहनेवाले भी अपने रोजके कामकी बहुतसी चीजोंके लिए उनके ही मुहताज थे। इसके बदले वे अब वे चीजें शहरों या विदेशोंसे मंगाते है, और जो धंधे देहातवालोंके बाप-दादा पुश्त-दर-पुश्तसे करते आते थे वे बंद हो गये हैं। पर शहरातियों और पढ़े-लिखे लोगोंने इसके बारेमें कुछ सोचा ही नही।

९ अतः आजका देहाती कंगाली, परावलम्बन और अबुधपनका शिकार हो गया है। उसमें पचास साल पहलेके देहातीकी आधी भी बुद्धि या जानकारी नहीं रही। देहाती कारीगर भी देहातके और सब लोगोंकी तरह अबुद्धि और अनाड़ी बन गया है।

१० ग्रामवासी जिस क्षण अपनी फुर्सतका अधिकांश समय कोई उपयोगी काम करनेमें लगानेका निश्चय करेंगे और नगरवासी देहातकी बनी चीजें काममें लानेका संकल्प करेंगे उसी क्षण देहाती और शहरातीका जो संबंध आज टूट गया है वह फिर जुड़ जायगा।

११ इस काममें देशभक्तोंकी एक बड़ी सेना खप सकती है। जितने स्वदेशी-संघ आज काम कर रहे हैं। उन सबके और दूसरोंके लिए भी लंबा-चौड़ा मैदान खाली पड़ा है। इसके लिए अगणित उद्योगोंके विषयमें पक्की जानकारी प्राप्त करना, वस्तुओंके बारेमें खोज करना और अनेक प्रकारके कारीगरोंकी भलाई-में दिलचस्पी लेना जरूरी है। इससे उन बहुसंख्यक लोगोंको ईमानदारी और

दस्तकारीका काम करके गुजर करनेका जरिया मिल जायगा जो आज बिना धंधेके भूखों मर रहे हैं।

१२ यह सच्ची सफल और 'सौ फीसदी' स्वदेशी है।

४

विशेष उद्योग

१. समाजका निर्वाह और उसकी समृद्धि तथा उन्नति अच्छी तरह होनेके लिए खेती और वस्त्रके उद्योगोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके उद्योगोकी जरूरत पडती है—जैसे धातु, कोयले, मिट्टीका तेल इत्यादिकी खानो तथा खनिज पदार्थोंसे सबंध रखनेवाले, नमक, मछली इत्यादि सामुद्रिक पदार्थोंसे सबंध रखने वाले, लकड़ी, लाख, रबर, जडी बूटिया इत्यादि जगली पदार्थोसे सबंध रखनेवाले।

२ ये धधे जीवन-निर्वाहके लिए खेती और वस्त्र जितने अनिवार्य नही है, फिर भी आजके सामाजिक जीवनमें इन उद्योगोकी उपेक्षा नही की जा सकती।

३. इन उद्योगोमे जनताका बड़ा भाग नही लगता, तथापि इनसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओकी हर एकको जरूरत पडती है, इसलिए इनके उपयोगकी दृष्टिसे इन उद्योगोंमें समस्त जनताका स्वार्थ है।

४ ऐसे उद्योग सारे देशमे नही चलते बल्कि स्थानिक ही होते है।

५. इनमे मछली पकडने और नमक बनानेके धधे खेती और चरखेके दरजेके है। उनके सबधमें आर्थिक नीति वैसी ही होनी चाहिए जैसी खेती या चरखेके विषयमें हो। जैसे सूत कातना हरएक किसानका हक है। वैसे ही नमक बनाना प्रत्येक समुद्रतटवासी जनताका अधिकार समझा जाना चाहिए।

६. ऊपर बताये दूसरे धधोमें बहुत करके बडी पूजी, विशेषज्ञता, कुशल व्यवस्था, बड़े पैमाने इत्यादिकी आवश्यकता होती है। ऐसे धधे चाहे व्यक्तिगत साहससे चलें या राज्यकी सीधी देख-रेखमें, इनपर राज्यका नीचे लिखे अनुसार नियंत्रण होना चाहिए—

(अ) इनमें बननेवाले सार्वजनिक उपयोगके पदार्थोंका उपभोग सस्ते-से-सस्ते दामोंमें जनताको मिलना चाहिए।

(आ) ये चीजें अच्छी-से-अच्छी बनावटकी और टिकाऊ होनी चाहिए।

(इ) ये धंधे व्यक्तिगत साहससे चलते हों तो इनके मुनाफे और कीमतपर राज्यका नियंत्रण होना चाहिए।

(ई) इनमें काम करनेवाले मजदूरोंकी सुख-सुविधाकी राज्यको खास तौरसे चिंता रखनी चाहिए।

(उ) इनमेंसे जो धंधे छोटे पैमानेपर और थोड़ी पूंजीसे तथा गृह-उद्योगके रूपमें चल सकते हों उन्हें विशाल उद्योगका रूप देते समय ऐसी मर्यादा रखनी चाहिए कि उनके बड़े-बड़े कल-कारखाने उनके गृह-उद्योगोंका नाश करनेवाले न हों। गृह-उद्योगोंमें बन सकनेवाली चीजोंकी बड़े कारखानोंमें बनानेकी मनाही होनी चाहिए।

७ कपड़ेके कारखाने भी जबतक जारी रहें, इसी नियमके अधीन होने चाहिए।

५
हानिकारक उद्योग

१ शराब, ताड़ी, अफीम, भांग, गांजा, तंबाकू, गोला-बारूद, अस्त्र-शस्त्र आदिके जैसे जनताकी नीति और आरोग्यताका नाश करनेवाले उद्योग राज्यको व्यक्तिगत-रूपमें नहीं चलने देने चाहिए, अथवा कड़ा नियंत्रण रखकर ही चलने देने चाहिएं।

२ उन्हें चलानेमें राज्यकी नीति उनसे पैसा पैदा करनेकी नहीं, बल्कि दवा-इलाज अथवा दूसरे प्रयोजनके लिए उन पदार्थोंकी जितनी आवश्यकता हो उतने ही परिमाणमें उनकी उत्पत्ति करने और उन्हें लोगों तक पहुंचानेकी दृष्टि रखनेवाली होनी चाहिए।

३ ऐसी चीजोंका देशव्यापी व्यापार परदेशी राज्योंकी इच्छाके अधीन रहकर ही चलने देना चाहिए।

६

उपयोगी धंधे

१ सामाजिक जीवनमें उद्योगोंके अतिरिक्त दूसरे भी कितने ही उपयोगी काम करनेवालोंकी जरूरत पड़ती है—जैसे शिक्षक, सिपाही, वकील, न्यायाधीश, अधिकारी, डाक्टर, दुकानदार, सफैये, (भंगी आदि), क्लर्क इत्यादि।

२ इन पेशोंके लोग प्रत्यक्ष रूपसे कोई उपभोग्य पदार्थ उत्पन्न नहीं करते पर अप्रत्यक्ष रूपसे पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा उपभोगमें और साथ ही अनर्थकारी पदार्थोंके नाश-निकासकी समुचित व्यवस्था करनेमें उनकी जरूरत पड़ती है।

३ इन पेशेवरोंके गुजारेका समाजपर जो बोझ पड़ता है उसे व्यवस्था-खर्च कह सकते हैं। इसलिए इन पेशेवरोंकी संख्या और इनपर होनेवाला व्यवस्था-खर्च जनताकी संख्या और समृद्धिके लिहाजसे सीमित होना चाहिए।

४ ये पेशे सेवावृत्तिसे होने चाहिए, पैसा कमाने या धनी होनेकी वृत्तिसे नहीं। अतः एक ओर तो ये धंधे करनेवालोंको समाजकी स्थिति और समृद्धिकी मर्यादाके अनुसार इतना नियत पारिश्रमिक देकर निश्चित कर देना चाहिए जिससे उनका जीवन-निर्वाह हो सके, दूसरी ओर उन्हें उतनेपर संतोष मानना चाहिए और इस प्रकार मिलनेवाले मेहनतानेके अलावा दूसरी आमदनी न करनी चाहिए तथा अपनेमें जो कुशलता हो उसका समाजको अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचाना चाहिए।

५ ऐसी मर्यादामें रहकर यदि ये पेशे किये जाय तो ये समाजके सर्वोदयमें सहायक होंगे और इन पेशोंमें आनेके लिए लोगोंमें अयुक्त लालसा तथा उसकी पूर्तिके लिए कुटिल उपायोंके अवलंबनकी आवश्यकता न रहेगी।

६ जिन्हें धन बटोरना है, जमीन, घर, गहने चाहिए, जिन्हें अपना विस्तार बढ़ाना है, उनके लिए उद्योग ही आकर्षक द्वार होना चाहिए, और उद्योगोंमें इनके लिए गुंजाइश भी होनी चाहिए। इस प्रकरणमें बताये हुए धंधोंकी आमदनी या मुनाफेकी सीमा ऐसी होनी चाहिए कि वे इस प्रवृत्तिके लोगोंको अनुकूल न प्रतीत हों।

७. इसके विपरीत जिन्हें सीमित पर स्थिर और निश्चित जीविका प्राप्त करनी और सेवा करनी है उनके लिए इन धधोंका द्वार खुला रहना चाहिए। अत इन धधोमें प्रवेश करनेके लिए उन पेशोंकी आवश्यक योग्यताके सिवा चरित्र भी ऊचे दरजेका होना चाहिए।

७

ललित कलाए

१ सगीत, कथा-वार्त्ता, चित्रकला, नृत्य, नाटक, सिनेमा आदि ललित-कलाए यदि उचित सीमामे रहें तो वे जन-समाजके निर्दोष मनोरजन, ज्ञानप्राप्ति तथा भावी विकासके साधन हो सकती है, मर्यादाके बाहर चली जाए तो शराब, अफीम-जैसे हानिकर व्यसन बन जाती है।

२ आमतौरपर ऐसी कलाओको जीविकाका धधा न बनाना चाहिए, बल्कि हरएक आदमीको इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए कि अपनी जीविकाके धंधेके अतिरिक्त ऐसी किसी कलामे भी दिलचस्पी ले सके।

३ इस कारण जनताके मनोरजन आदिके लिए ऐसी कलाओंके प्रदर्शन या जलसोकी व्यवस्था लोगोको अपने उत्साहसे ही और गैरपेशेवर मडलिया बनाकर करनी चाहिए।

४ ऐसी कलाओका शौक अमर्याद, अनीतिकी ओर ले जानेवाला तथा हानिकर न हो जाए, इसके लिए ऐसे प्रदर्शनो और जलसोपर नियत्रण और देख-रेख रहनी चाहिए।

५ ये नियत सामान्य नीति बताते हैं। पर सभव है कि इन कलाओके द्वारा जीविका-उपार्जन करनेकी मनाही करना व्यावहारिक और हितकर न हो। इस-लिए जहा उनमें सामर्थ्य हो वहा ग्राम-पचायतोको इसे अपना एक फर्ज मानना चाहिए कि ऐसी कलाओका निर्दोष, ज्ञानप्रद और सद्भाव-पोषक उपयोग लोगोंको मिल सकनेकी व्यवस्था करें और इसके लिए पिछले प्रकरणमें उपयोगी धंधोंके सम्बन्धमें बताए अनुसार अपनी आर्थिक स्थितिकी मर्यादामें रहकर ऐसे पेशेवरोंकी

निश्चित वृत्ति बांध दे, तथा चरित्रवान कलाविद प्राप्त करें।

६ जो लोग स्वतन्त्रतापूर्वक ऐसे धंधे करना चाहते हैं उनपर नीतिका नियम न होना चाहिए और अनुमति, विशेष कर इत्यादिके बंधन भी लगाये जा सकते हैं।

७ ऐसी कलाओंकी उचित पुष्टि और वृद्धिके लिए राज्यकी ओरसे, सुविधा देखकर, उनके विशेषज्ञोंको प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इसमें तारतम्य-का भंग न होता हो तो वैसा करना उचित होगा।

८ हरएक कारीगर जो अपने धंधेमें कलावृत्ति दिखाये, प्रोत्साहन देने योग्य समझा जाए और कलाकी इस तरहसे उन्नति करनेकी ओर राज्यको प्रथम ध्यान देना चाहिए।

खण्ड ८ : : गोपालन

१

धार्मिक दृष्टि

१ हिंदू-धर्ममें गोपालनको धार्मिक महत्त्व दिया गया है और गोवध महापाप माना गया है तथा गोरक्षा राजाओ और वैश्योका एक विशेष कर्तव्य बताया गया है। इसलिए इस कार्यके निमित्त लाखों रुपये दान किये जाते हैं। पर यह सब होते हुए भी, उचित दृष्टिके अभाव से हिंदुस्तानके पशुओंकी दशा गो-भक्षक देशोसे भी अधिक दयनीय है।

२ गोपालन-संबंधी धार्मिक दृष्टिमें नीचे लिखे अनुसार विकास होनेकी आवश्यकता है—

(अ) अपंग और निर्बल पशुओका पालन करना मात्र गोपालनका क्षेत्र नहीं है, गाय और बैलोकी नस्ल सुधारना, गायको अधिक सत्ववाली और अधिक दूध देनेवाली बनाना तथा बैलकी किस्म सुधारना भी गोपालन-धर्ममें सम्मिलित है।

(आ) अत पींजरापोल ऐसी आदर्श गोशालाए होने चाहिए जो लोगोंको गोपालनका पदार्थ-पाठ दे सकें—उसका प्रत्यक्ष उदाहरण बन सकें। गायोंके रखने-खिलानेके स्थान, उन्हें घास, दाना आदि देनेके तरीके और नतीजोंका लेखा रखनेमें शास्त्रीय सावधानता और शास्त्रीय विधिसे काम करनेका अभ्यास प्रकट होना चाहिए।

(इ) पींजरापोलको इस दृष्टिसे अच्छे सांड पालने चाहिए कि पशुओं-की नस्ल सुधारनेमें गांवके लोग उनका उपयोग कर सकें।

(ई) पींजरापोलमें चर्मालय-विभाग भी होना चाहिए और मरे ढोरों-के हाड़-मांस तथा चमड़ेके धंधेके प्रति घृणा-दृष्टि रखनेके बदले कर्तव्य-

दृष्टि होनी चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि जो मालिक मरे पशुओंके हाड-मांस और चमड़ेका उपयोग[1] नहीं होने देता वह उनकी हत्याको उत्तेजन देता है, इसलिए जीवदया-धर्मीको उचित है कि वह मरे पशुओंके ही हाड-मांस और चमड़ेका सदुपयोग करनेका आग्रह रक्खे।

(उ) जीवित पशुकी अपेक्षा कत्ल किये गये पशुका अधिक मूल्यवान माना जाना धार्मिक दृष्टि से भयानक है, यह सोचकर जीवित पशुओंका आर्थिक महत्त्व बढ़ानेका यत्न करना धार्मिक-कर्तव्य समझा जाना चाहिए।

(ऊ) बैलको बधिया करना अनिवार्य है, यह मानकर बधिया करनेकी क्लेश-रहित शास्त्रीय विधि जान लेनी और पींजरापोलोंमें उससे काम लेना चाहिए।

(ए) जब प्राणीको ऐसा कष्ट होता हो कि उसके अपंग होकर भी बचनेकी आशा न हो, वह केवल यंत्रणा भोगनेके लिए ही जी रहा हो, तो उसके प्राण त्यागका दुःखहीन उपाय कर देना दया-धर्म है, इस विचारको स्वीकार कर लेना चाहिए।

२
अन्य प्राणियोंका पालन

१ गो शब्दमें सामान्यतः समस्त प्राणियोंका समावेश होता है यह सही है, फिर भी उसके व्यवहारमें—अहिंसाकी दृष्टिसे भी—थोड़ा विवेक करनेकी आवश्यकता है। बिना विवेक किये प्राणियोंका पालन परिणाममें हिंसा ही बढ़ाता है।

२ ऐसे विवेकके अभावमें भैंसके दूध-घीका उपयोग गाय और भैंस दोनोंकी हिंसा बढ़ानेवाला साबित हुआ है। कारण—

(क) भैंस ठंडक और पानीमें रहनेवाला प्राणी है उसे गर्मी और सूखे प्रदेशोंमें रखना उसके साथ क्रूरता करना है।

---

१. हाड-मांसके उपयोगके मानी कोई 'खानेके लिए' न समझे। मतलब उनकी खाद तथा दूसरी उपयोगी चीजें बनानेसे है।—लेखक

(ख) पशुओंका कोई उपयोग न हो सकनेसे उनका वध होता है।

(ग) बैलके लिए गायका और दूधके लिए भैंसका पालन होनेके कारण भैंसकी तरह गायका पालन लाभदायक नहीं होता; इससे गायको अधिक दुधारु बनानेका प्रयत्न नहीं होता और उसके कत्लको उत्तेजन मिलता है।

३ इस कारण भैंसका घी-दूध त्यागकर उसका पालन बन्द कर देना उचित है। इसका अर्थ भैंसोंका कत्ल कराना नहीं उनकी बाढ़ रोकना है।

४ इसी तरह विवेकसे विचार करनेपर गलियोंमें भटकनेवाले कुत्तोंको खिलाना गलत धर्म साबित होगा। जो लोग कुत्तोंके शौकीन हों उन्हें चाहिए कि उन्हें ठीक तरीकेसे पालें और उनकी सब तरहसे खोज-फिक्र रक्खें। पर गली-गली भटकनेवाले कुत्तोंको खिलाकर उन्हें बढ़ने देना उनको यन्त्रणा देना है। इससे उनकी जातीय अधोगति होती है, दूसरे लोगों को असुविधा होती है और उनके पागल हो जानेका भय रहता है।

५ बंदर, कबूतर, चींटी इत्यादि जीवोंको खिलानेका धर्म तो इससे भी अधिक भूल-भरा है। जिन प्राणियोंका जीवन मनुष्योंपर अवलम्बित नहीं और जिनका मनुष्यके लिए कोई उपयोग नहीं उन्हें पोसना नासमझी है। इससे अन्तमें अपनी कठिनाइयां और इन प्राणियों की हिंसा दोनों बढ़ती हैं।

६ जो लोग जैन अथवा वैष्णवोंमें प्रचलित प्राणियोंके प्रति अहिंसा धर्मकी दृष्टिको नहीं मानते उनके द्वारा, पूर्वोक्त उपद्रवोंके कारण, ऐसे प्राणियोंका बार-बार वध होना अचरजकी बात नहीं है। ऐसे प्राणीके वधके लिए उन्हें खिलाना धर्म समझनेवाला वर्ग ही अधिकांशमें जिम्मेदार है। इसलिए वैसे अवसरों पर उनका क्रोध करना बेमौका है।

३

प्राणियोंके प्रति क्रूरता

१ प्राणियोंको एक झटकेमें काट डालनेकी अपेक्षा उनके प्रति क्रूरताका व्यवहार करनेमें कम हिंसा नहीं है। ऐसी हिंसा हिन्दुओंमें खूब होती है।

२. फूंका लगाना, कांटेदार पैनेसे कोचना, हदसे ज्यादा बोझा लादना, पेटभर खाना न देना, पूंछ मरोड़ना, इधर-उधर भटककर पेट भरनेके लिए छोड़ देना, घायल या पीड़ित ढोरोंका इलाज-सम्हाल न करना, बेकाम हो जानेपर घरसे निकाल देना, कुटावकर बधिया करना आदि तरीके अमानुषी और क्रूर हैं।

३ इसके फलस्वरूप हिन्दुस्तानके गाय, बैल घोड़े, गधे, बिल्ली इत्यादि सभी प्राणी इस हालतमें जीते है कि देखकर रोंगटे खड़े हो जाएं।

४

गोवध

१ हिन्दुओंकी धार्मिक दृष्टिके संतोषार्थ ही नहीं, हिन्दुस्तानकी आर्थिक दृष्टिसे भी गोवधकी मनाही होनी चाहिए।

२ पर ऐसा होनेतक हिन्दुओंको धीरज रखकर, समझा बुझाकर और सेवासे उसे रोकनेका यत्न करना चाहिए।

३ गोवध रोकनेके लिए मनुष्य (मुसलमान) का वध करना अधर्म है।

४ गायकी कुरबानी फर्ज नहीं है, यह समझकर मुसलमान गायकी कुरबानी बन्द कर दें तो यह उनका पर-सत्कृत्य समझा जायगा। इससे दूसरे नम्बरका सुकृत्य यह होगा कि यह काम वे ऐसे खानगी तौरपर करें कि हिन्दुओं का दिल न दुखे।

५. जो इस तरह खुले खजाने गायकुशी करता है कि हिन्दुओंके दिलोंको चोट पहुंचे या गायका जुलूस निकालता है वह धर्म-कार्य नहीं करता। ऐसे आचरणकी मनाही होनी चाहिए।

६ त्योहारके दिन गायकी कुरबानी करनेवाले मुसलमानकी बनिस्बत खानेके लिए रोज गायोंको कत्ल करवानेवाला अंग्रेजी राज्य हिन्दुओंका और साथ ही हिन्दुस्तान का अधिक द्रोह करता है।

५

मरे ढोर

१ अपना पालतू पशु मर जानेपर उसके हाड़-मांस और चमड़ेको काममें लानेके विचारमें अनुदारता है, कुछ लोगोंकी यह धारणा बन गयी है। इससे या तो उस पशुके किसी भी अंशका कोई उपयोग नहीं किया जाता या ढेढ-चमार उसका गलत तरीकेपर अथवा अधूरा उपयोग करते हैं। वे उसका मांस खाते हैं, उसे घसीटते हुए ले जाते और उसका चमड़ा खराब करके उतारते हैं। हड्डियां भी बेकार पड़ी रहती हैं।

२ यह खयाल छोड़नेकी जरूरत है। अपने पशुको जीतेजी अच्छी तरह पालना और मरनेपर मानपूर्वक उसे उठवाकर उचित स्थानपर पहुंचा देना चाहिए। यह प्राणी मरनेके बाद भी अनुपयोगी नहीं होता, यह सोचकर जीवित रहते उसके साथ दयाका व्यवहार करनेकी जरूरत है, और जिस प्रकार जीवित रहते उसका उपकार ग्रहण किया उसी प्रकार मरनेके बाद भी उसके शरीरका कृतज्ञ-बुद्धिसे उपयोग करने में बुराई नहीं है।

३ मरे ढोरका उपयोग न किया तो आर्थिक दृष्टिसे वह महंगा ही पड़ता है। नतीजा यह होता है कि गाय-भैंस पालना लोगोंसे चलता नहीं और सम्पूर्ण गोपालन-धर्म छूट जाता है।

४ मरे ढोरको घसीटकर ले जानेका रिवाज बुरा है। इससे चमड़ा घिस जाता है और चमड़ेकी कीमत घट जाती है। उसे या तो उठाकर या गाड़ीमें लादकर ले जाना चाहिए।

५ उसका चमड़ा ठीक तरहसे उतारकर हड्डी-मांस इत्यादिकी खाद बनाकर उपयोग करना चाहिए। उसकी आंतोंसे भी कामकी चीजें बनती हैं।

६. इस धंधेमें फैलावकी बहुत गुंजाइश है। अतः पढ़े-लिखे लोगोंको इसकी विद्या सीख लेनी जरूरी है।

खण्ड ६ : : खादी

१

चरखेके गुण

१ सहायक धंधेके रूपमें चरखेमें जो गुण है, वे दूसरे किसी उद्योगमें नही हैं। सक्षेपमें वे इस प्रकार है—

(अ) यह सुसाध्य है, तत्काल-साध्य है, क्योंकि—

(१) इसमें किसी बड़े आले-औजारकी जरूरत नही होती। रुई घरकी और औजार भी घरेलू।

(२) इसमे न बहुत बुद्धिकी आवश्यकता है न बहुत कुशलताकी। अपढ़-गवार किसान भी इसे आसानीसे कर सकता है।

(३) इसमें भारी मेहनतकी भी जरूरत नही है। स्त्रिया कातें, लड़के कातें, बूढ़े कातें, बीमार कातें, और

(४) यह परीक्षामें पास हो चुका है।

(आ) कतैयेको घर बैठे धंधा मिलता है, हमेशा उसका सूत बिक सकता है, और गरीबके घर हमेशा दो पैसेकी वृद्धि होती है।

(इ) बारिशकी भी इसे गरज नही है, सूखेमे भूखेका बेली बन जाता है।

(ई) न इसमे कोई धार्मिक रुकावट, और न ऐसा धंधा कि लोगोंको रुचे नही।

(उ) लोगोंको घर बैठे काम मिलता है, इसलिए मिलके मजदूरोंको जो खेती और घर-बार छोड़कर भागना पड़ता है, उनका कुटुंब छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह डर इसमें नही है।

(ऊ) इस कारण हिन्दुस्तानकी ग्राम-पंचायतें जो आज मृतप्राय हो गयी हैं उनके उद्धारकी आशा इसमें समायी हुई है।

(ए) किसानकी तरह बुनकरका भी काम इसके बिना नहीं चल सकता। जो बुनकर आज हिन्दुस्तानकी एक-तिहाई आवश्यकता पूरी करने भर कपड़ा बुनते हैं वे किसी दिन चरखेके अभावमें बरबाद हुए बिना न रहेंगे।

(ऐ) इसका उद्धार हुआ कि हजार धंधोंका उद्धार हो जायगा। बढ़ई, लुहार, धुनिये, रंगरेज—सबमें फिर प्राण आ जायगा।

(ओ) यही एक ऐसी चीज है जिससे धनके असमान विभाजनमें समानता आ सकती है।

(औ) इसीसे बेकारी जायगी। किसानको फुरसतके वक्त काम मिलेगा। इतना ही नहीं, आज जो पढ़े-लिखोंके दल-के-दल काम बिना भटकते हैं उन्हें भी पूरा काम मिल जायगा। इस धंधेके पुनरुद्धारका कार्य करना इतना बड़ा है कि प्रबन्ध और संचालनके काममें हजारों पढ़े-लिखोंकी खपत हो जाय।

२ इसके उपरांत चरखा जहां फिरसे दाखिल हुआ है वहां उसके द्वारा हुए अवांतर लाभ भी इसकी गुण-गणनामें लिए जा सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(अ) चरखेने कितनेही लोगोंके जीवन और हृदयको बदल दिया है।

(आ) चरखेकी बदौलत शराबखोरी घटने लगी है और किसान कर्जसे छुटकारा पाने लगा है।

३ अकालमें संकट-निवारणके कामोंमें चरखा सफल साबित हुआ है।

२

चरखेके संबंधमें खास खयाल

१ चरखेके विषयमें अनेक टीकाएं होती हैं, उनकी जड़में हैं चरखेके सम्बन्धमें अनेक गलत धारणाएं। वे धारणाएं क्या हैं यह नीचेके उत्तरोंसे मालूम हो जायगा।

२ चरखा मिलोंकी प्रतिद्वंद्विता नहीं करता; कर सकता भी नहीं पर मिलें चरखेसे स्पर्धा करती हैं, और उस हदतक वे बन्द कराने योग्य हैं।

३ जिस सशक्त मनुष्यको अपनी पूरी शक्ति और अपने पूरे समयका



उपयोग करते जिनको काम मिल जाता है उसे वह काम करनेसे रोकना चरखेका उद्देश्य नही है।

४ चरखा कुल मिलाकर देशके धनकी अवश्य वृद्धि करता है, और पूरी मजदूरी दी जाय तो चलानेवालेका गुजर करा सकता है। पर चरखेसे कोई धनवान होनेकी आशा रक्खे तो पछतायगा। यह चरखेका दोष नही बल्कि गुण है क्योंकि इससे धनका समान बटवारा अपने आप ही हो जाता है।

५ हिन्दुस्तानके किसानोका आज खेतीसे बचनेवाला छ महीनेका समय निरर्थक जाता है जिसके परिणामस्वरूप बेकारी और गरीबीका टेढ़ा प्रश्न उपस्थित होता है। इस प्रश्नका तात्कालिक, व्यावहारिक और स्थायी इलाज चरखा है, इतना अवश्य चरखावादियोका दावा है।

६ चरखेसे आमदनी भले ही फूटी कौडीके बराबर ही होती हो, पर किसानका तो आधा साल बेकार जाता है जिसमें उसे फूटी कौडीकी भी आमदनी नही होती और उसे बेकारी का रोग लग जाता है। इन दो बातोके लिए हिन्दुस्तानके अर्थशास्त्रमें चरखेका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

७ ऊपर जो यह कहा गया है कि चरखेसे बेकारोको नामकी ही सही पर कुछ आमदनी तो हो सकती है वह आत्म-सतोषके लिए नही बल्कि चरखेकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए कहा गया है। सच पूछिए तो क्या चरखेकी, क्या किसी दूसरे श्रमकी मजदूरी नहीके बराबर रहे, यह सतोषजनक स्थिति नही। इस सम्बन्धमे अधिक विचार 'स्वावलम्बी और व्यापारी खादी' में किया गया है।

३
खादी और मिलका कपडा

१ खादी और मिलमे प्रतिद्वद्विता नही समझनी चाहिए, और ठीक हिसाब लगाया जाय तो है भी नही।

२ चरखा करोड़ोंका गृह-उद्योग और जीवनका आधार है। मिलका उद्योग अगर इस तरह चलाया और चलने दिया जाय कि चरखेका नाश हो जाय तो उसे चलाने और चलने देनेवाले जन-हितका विचार नही करते।

३. इसलिए यदि मिलें रहें तो उनका क्षेत्र करघेके क्षेत्रसे बाहर रहना चाहिए। अर्थात् करोड़ों लोग जिस तरहका सूत कात और बुन सकते हैं वैसा सूत और कपड़ा बनानेकी मिलोंको मनाही होनी चाहिए।

४. व्यक्तिगत नहीं बल्कि राष्ट्रीय अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करें तो किसी भी वस्तुकी लागत कीमत आंकनेमें सिर्फ उसके उत्पादक के माल, पूंजी और मजदूरीमें लगे हुए खर्चका ही विचार नहीं करना चाहिए, बल्कि इस रीतिसे वह चीज बनानेसे अगर बेकारोंकी तादाद बढ़ती है तो उन बेकारोंके खाना-खुराकका खर्च जनताके सिर पड़ता है इसलिए उस खर्चको भी इस वस्तुकी तैयारीपर पड़ा समझना चाहिए। इस दृष्टिसे देखनेपर खादीकी अपेक्षा मिलें देशको महंगी पड़ती जान पड़ेंगी।[1]

---

(१) इस विचारको समझनेमें श्रीग्रेगकी पुस्तकसे लिया गया नीचे लिखा हिसाब उपयोगी होगा—हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके द्वारा एक आदमी जितना सूत कातता और कपड़ा बुनता है उससे मिलमें (१९२६ ई० के हिसाबके अनुसार) कताई आदमी पीछे फी घंटा २०३ से २३६ गुना तक और बुनाई २० गुना अधिक होती है। अर्थात् दोनों बराबर-बराबर घंटे काम करें तो सूतकी मिलका मजदूर २०० से अधिक कतैयोंको और मिलका बुनकर २० हाथ-बुनकरोंको बेकार बनाता है। ऐसे बेकारोंका पौना भाग या समय दूसरे धंधोंमें लगता है। इतनी उदारतासे हिसाब करें तो भी २६७॥ लाख मनुष्योंकी तीन आने रोजकी मजदूरीका नुकसान होता है। इनके निर्वाहका खर्च यदि विदेशी और स्वदेशी मिलोंके कपड़ोंपर रक्खा जाय तो फी गज पौने दो आना, और सिर्फ विदेशी कपड़ेपर रक्खें तो छः आना दो पाई कीमत उस कपड़ेकी बढ़ जायगी।

यदि राष्ट्रीय सरकार इन बेकारोंका निर्वाह-खर्च कपड़ेकी मिलोंसे प्रत्यक्ष करके रूपमें वसूल करे, तो स्पष्ट हो जाय कि मिलका कपड़ा सस्ता नहीं है। आज इस खर्चको जनता परोक्ष रीतिसे देती है, इस कारण कपड़ेके बाजार-भावमें यह दिखाई नहीं देता। अधिक विस्तृत चर्चाके लिए पाठकोंको श्री ग्रेगकी पुस्तक पढ़नी चाहिए। —कि० घ० म०

५ राज्यव्यवस्था साधारण जनताका हित देखनेवाली हो तो बेकारी दूर करनेका पक्का बंदोबस्त किये बिना मिलको खादीके साथ प्रतिस्पर्द्धा करने ही न देगी ।

६ ऐसी व्यवस्थाके अभावमें जनताको ही गरीबोंके प्रति सहानुभूतिसे प्रेरित होकर मिलका यह धधा रोकना चाहिए ।

७ मिलकी हानिकारक प्रतिस्पर्द्धाको रोकनेके अहिंसात्मक उपाय ये है—विदेशी वस्त्र तथा खादीके क्षेत्रमें उतरनेवाली देशी मिलोका बहिष्कार और धरना, खादी पहननेकी प्रतिज्ञा, खादीके लिए दान तथा यज्ञार्थ कताई ।

४

चरखा और हाथ-करघा

१ चरखेके बदले सिर्फ हाथ-बुनाईके धधोको उत्तेजन देना, और मिलके सूतका नही, केवल मिलकी बुनाई भरका बहिष्कार करना चाहिए—यह सुझाव, चरखेके बारेमें लोगोमे जो गलतफहमी है, उससे पैदा होता है । कारण यह कि—

२ हाथ-कताईका उद्योग जिस प्रकार सार्वत्रिक हो सकता है उस प्रकार हाथ-बुनाईके उद्योगके सार्वत्रिक होनेकी सभावना नही है ।[२]

३ चरखा सह-उद्योग ही हो सकता है और बुनाई स्वतत्र उद्योगके रूपमे चल सकती है, यह बात उक्त सलाह देने वालोके ध्यानमें नही आई ।

इसका हिंदी अनुवाद 'सहरका सपत्ति-शास्त्र' के नामसे सस्ता-साहित्य-मडलसे प्रकाशित हुआ है । अनुवादक

२ पिछली गणनाके अनुसार भारतको रोज दो करोड गज कपडेकी आवश्यकता होती है । (यह कुल कपडा हाथ-करघेपर बुनाया जाय तो भी) इसमें अधिक-से-अधिक रोज दो घटा काम करनेवाले एकाध करोड बुनकरोको हम काममें लगा सकते है । यदि यह कहा जाय कि इतने बुनकर नहीं बल्कि इतने कुटुबोंको काम मिलेगा तो रोजके दो आने भी उतने लोगोंमें बट जायेंगे । फलत फी-आदमी आमदनी और भी कम हो जायगी । —कि०घ०म०

४ अगर कानूनके द्वारा मिलकी बुनाई बन्द न हो बल्कि जनताके प्रयत्नसे ही उसका बहिष्कार करना पड़े तो बुनकरोंको मिलोंकी दया पर ही अवलंबित रहना पड़ेगा। क्योंकि मिलें तो हाथ-बुनाईकी प्रतिद्वंद्विनी हैं और दिन-दिन मिलें ही बुनाईका काम अधिक करती जा रही हैं। यह प्रतिस्पर्धा अधिक कड़वी और घातक होती जानेवाली है।

५ इसके विपरीत हाथ-करघा और चरखा दोनों जुड़वां भाई-बहन हैं। दोनों एक-दूसरेके बिना जी नहीं सकते।

६ प्रत्येक घरमें एक चरखा और थोड़ी आबादीवाले हर-एक गांवमें एक करघा, यह आनेवाले युगके विधानका मंत्र है।

५

खादी-उत्पादनकी क्रियाएं

१ खादी-उत्पादनसे संबंध रखनेवाली—लोढ़नेसे लेकर बुनाई तककी—सब क्रियाएं गृह-उद्योग द्वारा ही होनी चाहिए। यदि इनमें से किसी भी क्रियामें कारखानेका सहारा लेना पड़े तो यह किसी दिन खादीके उद्देश्यको खतरेमें डाल सकता है।

२ अतः ओटाई और धुनाई चरखेकी आनुषंगिक अंग समझी जानी चाहिए।

३ ओटनी, धनुष, चरखे तथा करघेमें जो कुछ सुधार किये जाएं वे इस बातका ध्यान रखकर किये जाने चाहिए कि गृह-उद्योगके रूपमें इनका नाश न हो।

४ खादी-सुधारके लिए कपास इकट्ठा करनेसे लेकर बुनाई तककी सब क्रियाओं और साथ ही धंधेका भी सूक्ष्मतासे अध्ययन करके सबमें सुधार करना जरूरी है।

५ इसके लिए पहली सीढ़ी यह है कि जिसके यहां कपासकी खेती होती है वह अपने इस्तेमालके लिए अपनी ही कपास इकट्ठी कर रखे। ऐसा करनेवाला किसान अच्छा बीज प्राप्त करनेकी चिंता रखेगा और कपासको बीनेमेंसे इस

तरह धुन लेना कि उसमें कचरा न आने पाये। किसान वह खुद ही करने लग जायगा पर इसका महत्त्व समझाने तथा उसे राह दिखाने और सुझाव देनेकी जरूरत है।

६ हाथ-ओटनीमें कपासके बीजको नुकसान नहीं पहुंचता और रूईके रेशोंकी मजबूती कम नहीं होती। ताजी ओटी हुई रूईको धुनना आसान होता है।

७ अच्छी कताई अच्छी पूनीपर बहुत कुछ अवलंबित होती है। जो कातना जानता है वह अच्छी और खराब पूनीका भेद समझता है और जो धुनना जानता है वह उसकी क्रियाओंकी बारीकी समझता है। अतः धुनना जाननेवाला दूसरेकी पूनीका इस्तेमाल लाचारी दर्जे ही करता है।

८ खराब पूनी सूतके नम्बर घटाती और टूटे तारोंका बिगाड़ बढ़ाती है, इस कारण आर्थिक दृष्टि से वह बहुत हानिकर है।

९ रूईकी किस्म जितना बर्दाश्त कर सके उससे मोटा कातना या अधिक महीन कातना दोनों हानिकर क्रियाएं हैं। पर सामान्यतः कतैयोंका रुख मोटा कातनेकी ओर होता है। इसे रोकनेकी जरूरत है। खादी उत्पादकोंको इसका खयाल रखना चाहिए कि रूईकी किस्म जितना सह सके उतना ही महीन सूत कताया जाय।

१० सूत पूरे कसका और समान निकले, इसपर भी उत्पादकोंको नजर रखनी चाहिए।

११ महीन सूतके मानी हैं थोड़ी रूईमें ज्यादा कपड़ा, कसदार सूतके मानी हैं टिकाऊ कपड़ा, और समान सूतका अर्थ है एक-सा और सुन्दर कपड़ा। फिर, सूत कसदार और एक-सा हो तो बुनकर कम मजदूरीपर उसे बुननेको तैयार रहता है। इस कारण खादी सस्ती करनेके ये महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

१२ खादी-सेवकको उत्पत्ति-संबंधी सब क्रियाओंका अनुभवयुक्त ज्ञान होना चाहिए। इसके सिवा खादी-उत्पत्ति-संबंधी सभी यंत्रके गुणदोषका ज्ञान और उनकी मरम्मत करना भी उसे आना चाहिए। उसे खुद इतना कारीगर होना चाहिए कि गांवके किसानोंको ही नहीं, बढ़ई, लुहार इत्यादि कारीगरोंको भी शिक्षा और राह बता सके। इसके सिवा उसे खादीके आर्थिक अंगका भी ज्ञान होना चाहिए।

६

स्वावलंबी और व्यापारी खादी

१ किसान अपने ही खेतकी कपासको खुद ओट-धुन-कात ले और सिर्फ बुनाईके पैसे खर्च करे तो वह खादी मिलके कपड़ेकी अपेक्षा उसे सस्ती पड़ती है। यह वस्त्र-स्वावलंबन कहलाता है। जो किसान इसके साथ बुनाईकी क्रिया सीखकर बुनने लगे तो वह तो पूरा स्वावलंबी हो जायगा और कपड़ा उसे बहुत सस्ता पड़ेगा।

२ किसान बाजारसे—खास करके राह-खर्च लगाकर आई हुई—रुई खरीदकर पूर्वोक्त क्रियाएं खुद करे तो वह कपड़ा मिलके कपड़ेसे आज कुछ महंगा पड़ता है, पर सूतके कस और अंकमें सुधार होनेसे इसकी कसर निकल जायगी। खादीको टिकाऊ बनानेमें जितने अंशमें सफलता प्राप्त होगी उतने अंशमें खादी सस्ती हुई समझना चाहिए।

३ व्यापारी खादीकी किस्मों और सस्तापनमें जो तरक्की अबतक हुई है उसके मापके विषयमें और साथ ही चरखेका काम सही दिशामें किया गया उद्योग है, इस बारेमें भी कोई शंका नहीं रहती।

४ परन्तु व्यापारी खादीको सस्ती करनेमें जो मेहनत उठाई गई है वह सब सही रास्तेपर नहीं हुई है, यह अब साफ दिखाई दे रहा है। जिन गरीबोंके हितके लिए यह कार्य उत्पन्न हुआ है उन्हें इसके द्वारा गुजरभरकी मजदूरी मिलती है या नहीं, इस ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया।

५ खादी या दूसरे ग्राम-उद्योगके उद्धारके लिए काम करनेवाले सेवकों और संघोंका धर्म केवल किसी उद्योगको जैसे-तैसे चालू कर देना ही नहीं है, बल्कि इस बातकी जांच करना भी है कि उन उद्योगोंमें लगे हुए लोगोंको रोटी चलने भरकी मजदूरी मिलती है या नहीं। यदि परिश्रम करनेवाले को उतना पारिश्रमिक न मिलता हो तो कहना होगा कि उस उद्योगके उद्धारसे गरीबकी मेहनतका बेजा फायदा उठाया जाता है।

६. इसके सिवा उन्हें इतनी मजदूरी चुका दी या मिल गई, इतनेसे ही सन्तोष नहीं मान लेना चाहिए, बल्कि उन्हें प्रत्येक मजदूरके जीवनमें प्रवेश करना और यह देखना चाहिए कि वह अपने धंधेमें अच्छे-से-अच्छा कारीगर हो और अपनी आमदनी अच्छे-से-अच्छे तरीकेसे खर्च करे।

७ खादीके विषयमें नीचे बताये नियम तमाम ग्राम-उद्योगोंपर यथायोग्य रीतिसे लागू किये जा सकते है—

(क) प्रत्येक कार्यकर्ताको कपास चुननेसे लेकर सूत बुनने तककी सभी क्रियाएं ठीक तौरसे जान लेनी चाहिए, जिसमें वह दूसरेको भी सिखा सके।

(ख) व्यवस्थापकोंको अपने-अपने क्षेत्रमें काम करनेवाले धुनियों, कतिनों और बुनैयोंकी एक फेहरिस्त रखनी चाहिए।

(ग) अपने कातनेवाले कौनसी रूई इस्तेमाल करते है यह भी वे जान ले और यह ध्यान रखें कि जितने अंक तकका सूत निकालनेकी ताकत रूईमे हो उससे अधिक नम्बरका सूत न काता जाय।

(घ) कतिनो तथा खादी बनानेमें सहायक दूसरे कारीगरोंसे साफ कह देना चाहिए कि वे अपने घरमे खादी-व्यवहार न करेंगे तो उन्हें काम न मिलेगा।

(ङ) इस चेतावनीके साथ-साथ ऐसी सुविधा भी कर देनी चाहिए जिसमें उन्हें मजदूरीके बदलेमें ही खादी मिल जाय।

(च) खादी कार्यालयमे आनेवाली सूतकी हरएक अट्टीकी मजबूती और समानता जाचनी चाहिए और जैसे कच्ची रोटी नही खाई जाती वैसे ही कमजोर या असमान सूत नहीं लेना चाहिए।

(छ) साधारणतः हरएक कत्तिनका सूत अलग ही रखना चाहिए। और जब कपड़ा बनानेभरको पूरा जमा हो जाय तब उसे अलग बुनवा लेना चाहिए। इससे खादी मजबूत बनेगी और बुनाई तथा सफाईमे भी सुधार हुए बिना न रहेगा।

(ज) इस तरह तैयार हुए हरएक थानपर, यदि ओटनेवाला, धुननेवाला, कत्तिन और बुनकर अलग-अलग हो तो, सबके नामकी चिट लगी होनी चाहिए।

(झ) जहां कारीगर कुटुंबीजन हों वहां उपर्युक्त तमाम क्रियायें अपने ही कुटुंबमें कर लेनेकी प्रेरणा उन्हें करनी चाहिए, और उत्तेजन देना चाहिए। अगर मजदूरी समान या लगभग समान कर दी जाय तो यह काम बहुत आसान हो जाय।

(ञ) इन कारीगरोंके जीवन और उनके आमद-खर्चकी पक्की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और जो अपनी आमदनीका उपयोग विवेकसहित करते हों उनकी मदद करनी चाहिए।

(ट) यदि कभी बिक्री कम होनेसे संघमें काम करनेवाले कारीगरोंकी संख्या कम करनी पड़े तो पहले उन्हें कम करना चाहिए जिनके पास रोजीका दूसरा साधन हो। मेरी समझमें तो आज यह स्थिति है कि कितने ही प्रांतोंमें केवल आजीविकाके ही लिये कातनेवालियां नहीं कातती हैं, बल्कि थोड़ी कोर-कसर करके दो पैसे बचाकर तुच्छ चीजें खरीदनेवाली स्त्रियां भी कातती हैं। ये न तो अच्छा खाना खानेकी जरूरत महसूस करती है और न कर्ज चुकाने की ही।

(ठ) हर जगह कार्यकर्ताओंको धनुष और चरखेको बारीकीसे देखना होगा। खासकर यह देखना होगा कि चरखेका तकुआ पूरे चक्कर करता है या नहीं, क्योंकि जो दर बढ़ानेकी तजवीज हुई है उसका मतलब यह नहीं है कि चाहे जिस कत्तिनको और चाहे जिस कातनेवालेको बढ़ी हुई दर दी जाय। दर तो कुछ जरूर बढ़ेगी, पर वह तो उन्हींको मिलेगी जो आज जितना कातते हैं उतने ही समयमें उससे अधिक और अधिक अच्छा कातेंगे। जो कतवैये या कत्तिनें अपनी कताईकी रीतिमें सुधार नहीं करेंगी उन्हें कुछ भी बढ़ती मिलनेकी संभावना नहीं है, सिवा इसके कि खादीकी मांग ही बढ़ जाय।

(ड) ऊपर के कथनसे यह अर्थ निकलता है कि चरखा-संघको नये चरखे, नये तकुए, नये मोढ़िये वगैरा अच्छे साधन शुरूमें कुछ सस्ते भावमें देने होंगे। बहुत-सी जगहोंमें तो माल और तकुएके सुधारसे सूतकी किस्म अपने आप ही सुधर जायगी।

७

यज्ञार्थ कताई

१. यज्ञार्थ कताईका अर्थ है अपने आर्थिक लाभकी दृष्टि न रखकर गरीबोंके उपयोगके लिए कातना।

२ जिसे गरीबोंके और देशके हितका खयाल है उसे इस प्रकार प्रतिदिन यज्ञार्थ कातना चाहिए।

३. इससे वे गरीब लोग कातनेमें लगेंगे जिन्हें थोडी आमदनीकी जरूरत होती है।

४ इसके सिवा हम लोग, जो कोई उत्पादक श्रम किये बिना बहुत-सी चीजोंका उपभोग किया करते है, उत्पादक श्रमकी महिमा समझेंगे और उसमें अपना कुछ हिस्सा अदा कर सकेंगे।

५ इस प्रकार धनी और गरीब दोनो एक प्रकारके श्रममें समान हिस्सेदार बनकर एक-दूसरेसे समुचित सम्बन्ध रख सकेंगे।

६ इसके सिवा चरखेको त्याग कर विदेशी कपडेको लानेका हमने जो पाप किया है, यज्ञार्थ कताई उसका प्रायश्चित्त-रूप भी समझी जा सकती है।

७ इस कारण आज कातना केवल स्त्रियोपर ही नही बल्कि पुरुषो और बच्चों पर भी फर्ज है।

८ जो अपना सूत खुद कात लेते है वे देशके लिए आवश्यक कपडेके बारे में अपनी जिम्मेदारी खुद उठाकर सहायता देते हैं। पर इसे यज्ञार्थ कताई नहीं कह सकते।

९ इस तरह कातनेके श्रमका दान बहुत बड़े परिमाणमें देशको मिले तो इससे भी व्यापारी खादी गरीबोंकी मजदूरी कम हुए बिना सस्ती हो सकती है।

८

खादी-कार्य

१ खादीकी उत्पत्ति और बिक्रीके काममें सैकड़ों उत्साकांक्षी युवकोंके लिए अपनी बुद्धि, व्यवस्था-शक्ति, व्यापारिक चतुरता और शास्त्रीय ज्ञानके प्रदर्शनका लम्बा-चौड़ा मैदान खुला पड़ा है। इस एकही कामको सम्यक रीतिसे सम्पन्न कर दिखानेसे राष्ट्र अपनी स्वराज्य-संचालनकी योग्यता सिद्ध कर सकता है।

२ इसके सिवा खादीरूपी सूर्यके आस-पास देहातके अनेक उद्योग ग्रहोंकी तरह बढ़ सकते हैं और उसके द्वारा जबरन निरुद्यमी और आलसी बने हुए लोगोंके घर रोजी और धन्धोंसे आबाद हो जायगे ।

३ इसके सिवा यह काम आत्मशुद्धिके कार्यमें बहुत बड़ी सहायता दे रहा है। इसके निमित्तसे कार्यकर्ता गांव-गांवमें स्वराज्यका और उसकी तैयारीके रूपमें किये जानेवाले रचनात्मक कार्यक्रम (अहिंसा, मद्यपान-निषेध, अस्पृश्यता-निवारण, स्वच्छता, राष्ट्रीय एकता आदि) का संदेश पहुंचा रहे हैं।

४. खादी-शास्त्र के सम्बन्धमें सब प्रकारकी जानकारी देने और खोज-छानबीन करनेवाले एक विभागकी जरूरत है ।

खण्ड १० :: स्वच्छता और आरोग्य

१

शारीरिक स्वच्छता

१ शारीरिक स्वच्छताके विषयमें हिन्दुस्तानकी कुछ जातियोंने तो ठीक तौरसे ध्यान दिया है, पर साधारण जनतामें इस विषयमें अभी बहुत काम करना है।

२. बच्चेकी सफाई पर तो उन जातियोंमें भी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। बालकके खुद सफाई रखनेके लायक होनेके पहले उसके मा-बाप उसे साफ-सुथरा रखनेकी पूरी फिक्र रखते हो, यह नही दिखाई देता।

३. नित्य स्नान करना चाहिए, इसे हिन्दुओंका बहुत बड़ा भाग धार्मिक नियम की भांति मानता है, पर हिन्दूमात्र ऐसा मानते है यह नही कह सकते। दूसरे हिन्दुस्तानियोंमें रोज नहानेकी आदत आम नही है। हिन्दुस्तानमें रोज नहाना स्वच्छता और साथही आरोग्यके लिए आवश्यक है।

४ पर नहानेका मतलब सिर्फ बदन गीला कर लेना नही है। बहुतेरे नित्य नहानेवाले इससे आगे नही बढते। नहानेके मानी है शरीरका मैल साफ करके त्वचाके छिद्रो को खोल देना। अत नहानेका पानी पीनेके पानी जितना ही साफ होना चाहिए। ऐसा पानी काफी मात्रामें रोज न मिल सके तो गंदे पानीमें नहानेकी बनिस्बत साफ पानीमें कपडा भिगोकर उससे शरीरको रगडकर पोछ डालना कहीं अच्छा है। हमारे देशके गावोमें ही नही, बडे-बडे कस्बोमे भी लोग जैसे पानीसे नहाते हैं उसे नहाने लायक नही कह सकते।

५. आंख, नाक, कान, दांत, नाखून, बगल, काछ आदि अवयव जिनसे मैल निकलता है अथवा जिनमें मैल भरा रहता है उनकी सफाईकी तरफ सभी लोगोंमें—खासकर बच्चोंके बारेमें—बहुत लापरवाही रक्खी जाती है। छोटे बच्चोंमें खासतौरपर होनेवाली आंखकी बीमारियां रोज आंख और नाकको

साफ पानी और साफ कपड़ेसे साफ न करदेनेका नतीजा है। इस विषयमें सफाईके लिये मुनासिब आदतें लगाने और गंदगीसे घिन करना सिखानेकी ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अतः ग्राम-सेवकों और शिक्षकोंको इस विषयपर बहुत बारीकीसे ध्यान देना चाहिए।

६ कपड़ोंकी सफाई भी शारीरिक-स्वच्छताका ही भाग है। कपड़ोंकी गन्दगीका कारण केवल दरिद्रता ही नहीं कही जा सकती। बहुतेरी गन्दगी तो अच्छी आदतें न पड़ी होनेसे और आलस्यके कारण रहती है।

७ थकती लगे कपड़ोंसे हमारी दरिद्रता प्रकट होती है तो इससे हमें शर्मिन्दा होनेकी जरूरत नहीं। शूरवीरके लिए जैसे घाव भूषणरूप होता है वैसे ही गरीबके लिए पैबद भी भूषण समझा जा सकता है। पर कपड़ोंको फटा और गंदा रखकर मनुष्य अपनी गरीबीका नहीं बल्कि अपने फूहड़पन और आलस्यका विज्ञापन करता है और यह जरूर शर्मिन्दा होने लायक बात है।

८ साफ कपड़े दूधकी तरह सफेद होने चाहिए, ऐसी बात नहीं है। मेहनत-मजदूरी करनेवाले गरीब लोग सफेद दूध-जैसे कपड़े रखकर पार नहीं पा सकते। पर साफ पानीसे उन्हें बार-बार धोना, बीच-बीचमें साबुन या खार आदिसे धो लेना और गरम पानीमें डालकर जंतुरहित कर लेना आवश्यक है।

९ बदनपर पहने हुए कपड़ोंसे ही नाक, हाथ, वगैरा पोंछना और उनमें रोटियां या खानेकी दूसरी चीजें बांध लेना बड़ी गंदी आदत है। जिनके पास बदनपरके कपड़ोंके सिवाय दूसरा कपड़ा ही नहीं है उन्हें छोड़कर औरोंको तो इसके लिए पुराने कपड़ोंमेंसे छोटा-सा रूमाल बनाकर उसका उपयोग करना चाहिए। इसमें कुछ खर्च नहीं लगता और स्वच्छताकी रक्षा होती है। इसे साफ रखना बहुत आसान है।

२
साफ-सुथरी आदतें

१. शारीरिक स्वच्छताके सिवा और भी साफ-सुथरी आदतें डालनेकी

जरूरत है। इनके अभावमें हम उन लोगोंके दिलोंमें नफरत पैदा करते हैं जिनकी आदतें सुधरी हैं।

२. हमारी आंखोंको ऐसा अभ्यास होना चाहिए कि वे गंदगीको देखकर खामोश न रह सकें। इसका अर्थ यह नहीं है कि गंदगीको देखकर हम वहांसे खिसक जायें, बल्कि फौरन उस गंदगीको दूर करनेका उपाय करें।

३ सुथरी आदतोंवाला आदमी कभी बैठनेकी जगहको साफ किये बिना न बैठेगा, और जब उठेगा, तब भी उसे साफ कर देगा। वह हर जगह कागजके टुकड़े या दूसरा कूड़ा-करकट न फेंकेगा। जहां-तहां थूकेगा नहीं। दतुअनका चीरन, बीड़ीके ठूंठ, जली हुई दियासलाइयां, चाहे जहां नहीं फेंकेगा, बल्कि इन सबके लिए खास टोकरी या दूसरा बरतन रखकर उसीमें फेंकेगा।

साफ-सुथरी आदतें लगानेके लिए नीचेके नियमोंका भी पालन करना चाहिए —

४ पानी लिये बिना पाखाने नहीं जाना चाहिए।

५. पाखानेसे आकर हाथ-पांवको मलकर धोना चाहिए और पाखानेका लोटा—खास उसी के लिये न हो तो—अच्छी तरह मलकर मांजना चाहिए।

६ पीनेके पानीके मटकेमें डुबोनेको अलग बरतन रखना चाहिए। जूठा बरतन तो उसमें कदापि न डालना चाहिए। मटकेके पास इस तरह खड़े रहकर पानी नहीं पीना चाहिए कि पानीके छींटें मटकेपर पड़ें।

७ जहां बहुतसे लोगोंके लिए पीनेका एक ही बरतन हो वहां प्याले या गिलासको मुंहसे लगाकर पानी पीना अनुचित है। ऊपरसे पीनेकी आदत डालनी चाहिए और जो इस तरह न पी सके उन्हें अपना बरतन अलग रखना चाहिए या चुल्लू-अंजलीसे पीना चाहिए।

८ जहां भोजन किया हो वहां यदि खानेकी चीजें बिखरी हों तो उन्हें उठाकर उस जगहको, घरके अंदर हो तो धोकर और खुलेमें हो तो अच्छी तरह बुहारकर, साफ कर देना चाहिए। ऐसा होनेके पहले उस जगहमें घूमना-फिरना जूठन चिपके पांवोंसे साफ जगहों और कमरेमें जाना-आना तथा उस जगह दूसरोंको

भोजन कराना अनुचित है। इसके सिवा ऐसा स्थान मक्खियोंको खानेको न्योता देनेके समान है।

९ साधारणतः कलछी या चमचेसे ही परोसना चाहिए। साग, दाल या भात जैसी चीजें हाथसे नहीं परोसनी चाहिए। इससे भी ज्यादा खराब है जूठे हाथोंसे परोसना। रोटी अथवा पूरी जैसी सूखी चीजें भी जूठे हाथसे नहीं देनी चाहिए।

१० परोसनेका बरतन खानेवालेकी थाली या कटोरीसे छुआकर परोसना अस्वच्छता है और छू जानेके डरसे परोसनेके बजाय थालीमें दूरसे फेंकना या बिखेरना असभ्यता है।

११ गंदे पांवो अपने बिछौनेपर भी पैर नहीं रखना चाहिए। अनेक मनुष्य जहां साथ सोए हों वहां चलने फिरनेवालेको किसीका बिछौना रौंदना न चाहिए।

१२ कामसे आकर अथवा लघुशंका करके हाथ धोये बिना खानेकी चीज को छूना चाहिए, न पीनेके पानीके मटकेमें हाथ डालना चाहिए। पान, तंबाकू, बीडी आदिके व्यसनवालोंको इस विषयमें खास एहतियात रखनी चाहिए। कितनोंके शरीरमें बराबर खुजली होती रहती है। कितनोंको बार-बार नाक साफ करनी पड़ती है। ऐसे आदमियोंको भी हाथ धोकर ही खाने-पीनेकी चीजें छूनी चाहिए।

१३ जिस डोल या बाल्टीमें कपड़े धोये हों उसे मांजे और उसकी चिकनाई दूर किए बिना उसे कुएमें नहीं डालना चाहिए और न पीने-पकानेकी पानी उससे भरना चाहिए।

१४. पेशाब, कुल्ली करने, थूक वगैराके लिए मोरियोंका उपयोग करनेका रिवाज बहुत ही गंदा है और बहुत ही अच्छा हो कि ऐसी मोरियां घरमें रक्खी ही न जायें। इसके लिए खास बरतन काममें लाना और उन्हें दूर ले जाकर साफ करना अच्छे-से-अच्छा फायदा है। जिन गांवोंमें गंदे पानीके निकासके लिए अच्छी नहर (गटर) की व्यवस्था नहीं है वहां मोरियोंसे काम नहीं लेना चाहिए।

१५. तथापि जहां लोटियोंसे ही काम लेना पड़े वहां नालीमें पेशाब करनेके लिए बैठनेवालेको चाहिए कि नजदीक कोई बरतन आदि पड़ा हो तो उसे इतनी दूर रख दे जिससे उसपर छींटें न पड़ने पावें। इसके सिवा इस तरह हाथ धोना या कुल्ली नहीं करनी चाहिए जिससे उसपर छींटें पड़ें।

१६ मुंहसे गंदी गालियां निकालनेकी आदत भी एक प्रकारकी अस्वच्छता ही है। जिस जीभ से परमात्माका नाम लिया जाता है उसी जीभसे गंदी गालियां निकालना महाकर धूरपर लोटनेसे भी ज्यादा गंदा काम है, क्योंकि इससे जीभके साथ साथ मन भी अपवित्र होता है।

३

बाह्यय स्वच्छता

१. शारीरक स्वच्छताके विषयमे शायद ऊपरवाले वर्गोंको प्रमाणपत्र दिया जासके, पर घर, आंगन, गली वगैराकी सफाईके बारेमें नहीं दिया जा सकता। हां, दलित जातियां अलबत्ता इस बारेमें छोटी-मोटी सनद पा सकती हैं। पर सभी-को इस विषयमें अपने जीवनमें बहुत सुधार करनेकी आवश्यकता है।

२ जहां-तहां थूकने, मल-मूत्र त्याग करने, कूड़ा फेंकने और उसे इकट्ठा होने देनेकी आदत हिंदुस्तानके गांव, शहर, तीर्थक्षेत्र, रास्ते, नदी, तालाब, धर्म-शाला, स्टेशन, रेल, जहाज वगैरह को कलंकित कर डालती है।

३ इस आदतकी जड़में अस्पृश्यता समाई हुई है। आदमी जहां रहेगा वहां गन्दगीके निमित्त तो पैदा होंगे ही। पर हिंदुस्तानके स्पृश्य वर्गोंने खुद गन्दगी साफ करनेके कामको हलका समझकर और उस परोपकारी कामके करने-वालोंको अस्पृश्य मानकर, जहां वे नहीं जा सकते वहांसे गंदगीको नियमित रीतिसे दूर करनेके बदले इकट्ठी करनेका रिवाज डाल रखा है और अस्पृश्योंसे सहयोग न करके उनके मत्थे इतना ज्यादा काम मढ़ दिया है जो उनके किये हो नहीं सकता। परिणामस्वरूप देशमें अनेक प्रकारके उपद्रवों को बसा रक्खा है और आम इस्ते-माल के स्थानोंको ऐसा बना दिया है कि देखकर रोएं खड़े हो जायें।

४ ऊपर बताये सार्वजनिक स्थानोंमें थूकना, मल-मूत्र त्याग करना और कूड़ा फेंकना पाप है। और इसे अपराध मानना चाहिए।

५ पान, तम्बाकू वगैराकी आदत न हो तो नीरोग मनुष्यको मंजनके सिवा दूसरे वक्तमें थूकनेकी जरूरत नहीं होती। दांत, नाक या फेफड़ेके बीमारको बार-बार थूकना या छिनकना पड़ता है। इससे जाहिर होता है कि पान-तबाकू आदिकी आदत डालनेके मानी हैं नीरोगी होते भी रोगीको मिलनेवाला कष्ट भोगना। मनुष्यके थूक तथा बलगममें बहुत तरहके जहर होते हैं। ये जहर हवामें मिलकर तन्दुरुस्त आदमीको भी छूत लगा देते हैं। अत थूक, बलगम आदिको नष्ट करनेकी व्यवस्था करनी चाहिए।

६ हर घरमें थूकनेके लिये राखसे भरी हुई एक कथरी या हंडिया होनी चाहिए और उसीमें सबको थूकना चाहिए। उसे रोज दूर खेतमें ले जाकर खाली करना और दूसरी राखसे भरना चाहिए। थूकनेके लिये पीकदानी इस्तेमाल की जाती हो तो उसे हर जगह साफ नहीं करना चाहिए। बंबई जैसे शहरोंमें जहां गटरोंका पूरा इंतजाम है वहां भले ही वह नालीपर धोई जाय, पर देहात और कस्बोंमें तो उसे खेतोंमें खाली करके उसपर सूखी मिट्टी डाल देनी चाहिए, या गरम-गरम राख उसपर डालकर वह राख दूर फेंक आनी चाहिए।

४

शौच[1]

१ सड़कपर पाखाना फिरनेकी आदत तो हर्गिज न होनी चाहिए। खुली जगहमें लोगोंके देखते पाखाना फिरना बल्कि बच्चोंतकको फिराना असभ्यता है।

२ इसलिये प्रत्येक गांवमें दूरकी जगहमें सस्ते-से-सस्ते पाखाने बनवाने चाहिए और उन्हें नियमित रूपसे रोज साफ कराना चाहिए।

---

१. यह तथा इसके आगेके कितनेही प्रकरण गांधीजी लिखित 'गामड़ानी वहारे' नामक लेखमालाके आधारपर लिखे गये हैं। 'ग्राम-सेवा' के नाम से यह पुस्तिका 'मंडल' से प्रकाशित हो चुकी है। मूल्य ।) है।

३ जो 'जंगल' ही जाना हो तो गांवसे एक मील दूर जहां अबादी न हो वहां जाना चाहिए। 'जंगल' बैठते वक्त गड्ढा खोद लेना चाहिए और क्रिया पूरी करनेके बाद मलपर खूब मिट्टी डाल देनी चाहिए। समझदार किसानको चाहिए कि अपने खेतोंमें ही पूर्वोक्त प्रकारके पाखाने बनाकर अथवा 'जंगल' जाकर मैला गाडे और बे-पैसेकी खाद ले।

४ इसके सिवा बालक, बीमार तथा बेवक्तके इस्तेमालके लिए हर घरके साथ एक पाखाना जरूर होना चाहिए। उसके लिए कनस्तरके अड्डे या मिट्टीके गमलेका उपयोग किया जा सकता है और उसमें भी हर आदमीको पाखाना फिरनेके बाद काफी मिट्टी डाल देनी चाहिए। कनस्तरोंको रोज किसी खेतमें गड्ढा खोदकर उसमें खाली करना चाहिये और गड्ढेको साफ मिट्टीसे भर देना चाहिए। कनस्तरको इस तरह साफ करना चाहिए कि बदबू न रहे।

५ पाखानेमें पानी और पेशाबके लिए अलग डिब्बा या डोल रखना चाहिए जिससे बाहर जरा भी गीला न होने पाये।

६ सडास पाखाने बिलकुल बेकार है इतनी गहराईमें खाद पैदा करनेवाले जंतु नहीं रहते इससे उनमें गंदी गैस पैदा होती और हवाको बिगाडती है।

७ गलियोंमें पेशाब करना पाप समझना चाहिए। अत इसके लिए भी काफी मिट्टी भरे हुए मटके रखने चाहिए, जिससे न बदबू आये, न छींटे उडें।

८ हरएक आदमीको पाखाना खुद साफ करनेकी तालीम लेनी चाहिए। इससे पाखाना गलत तरीकेसे रखने या गलत तौरपर इस्तेमाल करनेसे कितनी मेहनत बढ़ जाती है इसका उसे खयाल रहेगा और वह खयालसे पाखाना बनवाना, कनस्तर आदि लगाना और काममें लाना सीख लेगा। साथ ही भंगी समाजकी कितनी कठिन सेवा कर रहा है यह समझ जायगा। वह यह भी जान जायगा कि अच्छी तरह इस्तेमाल किया जाय तो पाखाना साफ करनेमें घिन लगनेकी कोई वजह नहीं और भंगीकी कठिनाइयोंका कारण इस क्रियाकी मलिनता नहीं बल्कि इसके इस्तेमाल करनेके बारेमें बरती जानेवाली लापरवाही है।

९. मनुष्यके मल-मूत्रकी भांति ही पशुओंके गोबर और मूत्रका भी खादके रूपमें ही उपयोग करना चाहिये। गोबर के कंडे बनाना, करेंसी नोटको जलाकर ताप डालने जितना मंहगा सौदा है। पशुओंके मूत्रका कोई उपयोग नही होता, इससे वह आर्थिक ही नही आरोग्यताकी दृष्टिसे भी हानिकर होता है।

५
जलाशय

१ तालाब, कुए और नदीका पानी साफ रहे इस ओर ग्राम-पंचायतो और ग्राम-सेवकोको खूब ध्यान देना चाहिए।

२ जलाशयोकी आजकी स्थिति बहुत शोचनीय है। तालाबमें ही बरतन साफ किये जाते है, नहाया और कपडा धोया जाता है, मवेशी भी उसीमें पानी पीते है, नहाते है और पडे भी रहते है, उसमें बच्चे और बडे तक आबदस्त लेते हैं। उसके पासकी जमीन पर तो मल-त्याग करते ही हैं। और यही पानी पीने, खाना पकानेके काममें लाया जाता है—यह सब पाप माना जाना और बन्द होना चाहिए।

३ गांवके तालाबके चारो ओर बाध बना देना चाहिए, जिससे मवेशी उसमे न जा सकें और उसके नजदीक खेल (लम्बी हौज) पशुओके पानी पीनेको बनाना चाहिए।

४ इसी प्रकार कपडे धोनेके लिए तालाबके पास एक टकी होनी चाहिये और उसपर ऐसी पक्की जगह बना देनी चाहिए जिससे उसका पानी फिर तालाबमें न पहुचकर दूर निकल जाय।

५. इस खेल तथा टकी को गावके लोग अगर हाथोहाथ रोज भर दिया करें तो उत्तम है, वर्ना थोडे खर्चसे उनके भरानेकी व्यवस्था करनी चाहिए।

६. जूठे बरतन तालाब या कुएमें न धोने चाहिएं, बल्कि बाहरकी टंकी में मांज-धोकर ही जलाशयमें उन्हें डुबोना चाहिए।

७ पानी भरनेवालेको अपने पांव पानीमें न डुबोने पडें ऐसी सुविधा तालाबमें होनी चाहिए।

८ जिस गांवमें एक ही तालाब हो वहां तालाबके अन्दर नहाना नहीं चाहिए। जहां अधिक तालाब हों वहां पीनेके पानीका तालाब अलहदा रखना चाहिये।

९ कुओंको समय-समयपर मिट्टी निकलवाकर साफ रखना चाहिए। उसके चारों ओर मुंडेर होनी चाहिए, और कीचड न होने देना चाहिए। इसके लिये जगहकी जगह पक्की बनानी चाहिए, और पानी रसकर कुएमें वापस न जाय इसके लिए गिरनेवाले पानी को दूर निकालनेका इन्तजाम होना चाहिए।

१० इस तरह पानीको दूर ले जानेके लिए घर, कुए आदिके सामने बनी हुई नालियोमें काई और घास-पात जम जाती है। उनमेंसे बदबू निकलती है और मच्छरोको बढ़नेकी जगह मिलती है। अत इन नालियोकी सफाईपर निरन्तर ध्यान दिया जाना चाहिए। और उन्हें रोज कूचेसे रगडकर साफ कर देना चाहिए।

६
रोग

१ रोग व रोगके बाहरी लक्षणोके बीच जो भेद है उसे समझ लेना चाहिये।

२ सिर दुखना, बुखार आना, दम फूलना वगैरा रोग नही हैं बल्कि शरीरमें पैदा हुए जहरो या रोगोंके दिखाई देनेवाले परिणाम है।

३ प्राणियोका रक्त ऐसे परोपकारी जन्तुओसे बना हुआ है जो शरीरमें पहुचे हुए जहरोंको निकाल डालनेकी जोरोसे कोशिश करते है। यह बलवान प्रयत्न ही बुखार, सास, सूजन, दर्द इत्यादिके रूपमें प्रकट होता है।

४ जिन कारणोसे ये जहर पैदा हुए हो या होते रहते हो वह सच्चा रोग है, बुखार वगैरा तो बाहरी चिन्हमात्र हैं।

५ गिरने, चोट लगने आदि आकस्मिक दुर्घटनाओसे उत्पन्न रोगोंको छोडकर मोटे हिसाब यह कहा जा सकता है कि रोग-मात्रका कारण है असयमी जीवन।

६ खाने-पीने, विषय-भोग, सोने-जागनेमें अनियम, आलस्य, अतिश्रम, नाटक-सिनेमा इत्यादि विलास तथा द्वेष, क्रोध, राग इत्यादि भावनाओंके बलवान वेग आदि—यही असयम रोगोको न्यौता देनेवाले हैं।

७. ये असंयम अज्ञानसे होते हों, भूलसे होते हों, मजबूरीसे होते हों या जान-बूझकर होते हों, सबका परिणाम शरीरको रोगके रूपमें भोगना पड़ता है।

८. ये कारण मौजूद हों और उसमें अस्वच्छ हवा, अस्वच्छ पानी और गन्दगी आ मिले तो रोग पैदा हो जाते हैं।

९. यह देखा जाता है कि स्वच्छ और संयमी जीवन बितानेवालोंको छूतके रोगियोंके बीचमें रहते हुए भी रोग नहीं होते। इससे प्रकट होता है कि मनुष्यके रक्तमें बाहरी जहरोंको हटानेकी बड़ी ताकत होती है। असंयमके कारण इस बलके घट जाने पर ही छूत लगती है।

१० रोगके कारणोंको रोकना पहला इलाज है। इन इलाजोंमें भी पहला इन्द्रियों और मनके संयमके साथ स्वच्छ तथा उचित आहार-विहार तथा यथेष्ट परिश्रम और नींद है और दूसरा है साफ हवा, साफ पानी, तथा कपड़े, घर, आंगन, गलियों वगैराकी सफाई।

७

इलाज

१. शरीरमें अस्वस्थता मालूम होनेपर रोगको रोकनेवाले इलाजोंपर अमल करना, पहली सीढ़ी है।

२ इन इलाजोंपर ठीक अमल हो तो रोग बहुत करके स्वाभाविक रूपसे ही अच्छे हो जाते हैं। दवाइयां अधिकतर तो निकम्मी और हानिकर भी होती हैं।

३ आहार-विहारकी भूलोंको दूर किये बिना सिर्फ हवा-पानीके सुधारसे रोग दूर करनेकी इच्छा करना शरीरको साफ पानीसे धोकर मैले अंगोछेसे पोंछने जैसा है। और इन दोनोंको सुधारे बिना दवासे आराम होनेकी कामना करना ऐसा है जैसे यह मानना कि मैला कपड़ा काला रंग देनेसे साफ हो जाता है।

४. दवाके अलावा दूसरे वैज्ञानिक इलाज हैं जिनका हरएकको ज्ञान

होना चाहिए । ये आसानीसे और बिना खर्चके किये जा सकते हैं ।

५. हरएक गांवमें दवाखाना या अस्पताल होना चाहिए, यह खयाल गलत है । अनेक गांवोंके बीच एक दवाखाना या अस्पताल भले ही हो । गांवके दवाखानेके मानी आमतौरसे ग्राम-सेवकके उपचार होना चाहिए ।

६. सबसे अच्छा उपचार है उपवास और उसके साथ कटिस्नान तथा सूर्यस्नान । इसकी उपयुक्त विधिका ज्ञान स्वयंसेवकको प्राप्त कर लेना चाहिए ।[1]

७ इसके अलावा भीगी मिट्टीकी पट्टी बहुतेरे रोगों और बुखारोंका इलाज कही जा सकती है । बुखार तेज चढ़ा हो, सिर दुखता हो, पेट या पेडूमें दर्द हो, भीतरी चोट या दूसरे कारणोंसे कहीं सूजन आयी हो, नकसीर फूटी हो, खसरा, खाज इत्यादि चर्मरोग हुए हों, कब्ज रहता हो, अच्छी नींद न आती हो, जहरीले जंतुने डंक मारा हो—इन सबमें बिना कंकड़ीकी बारीक मिट्टी भिगोकर उसकी पट्टी दर्द-तकलीफकी जगह बांधना और एक पट्टी या लेप सूख जानेपर दूसरा बांधना अकसीर और प्राकृतिक इलाज है ।

८. सेककी जरूरत हो—जैसे फोड़ेको पकाना हो, सांस लेनेमें कष्ट कठिनाई होती हो, थकावट या सरदीकी पीड़ा हो—तो गरम पानीमें छोटा तौलिया निचोड़कर खाल जल न जाय इस प्रकार सेंक लेनेसे बहुत आराम मिलता है । बालू, मिट्टी या ईंटसे भी, उसे गरम करके कपड़ेमें लपेटकर, जले नहीं इसका ध्यान रखते हुए, सेंक लिया जा सकता है ।

९. किसीके बीमार होते ही तुरत उसका बिछौना दूसरे लोगोंसे अलग कर देना चाहिए । उसके आसपाससे आदमियों और चीज-वस्तुकी भीड़ कम कर देनी चाहिए । उसको इस तरह लिटाना चाहिए जिससे काफी प्रकाश और झोंका न लगते हुए हवा मिल सके । उसके कपड़े, चादर, ओढ़ना वगैरा साफ रखने चाहिए, उसके कंबल, बिछौने, तकिया वगैराको दूसरे-तीसरे रोज तेज धूपमें रखना चाहिए ।

१—इस विषयमें गांधीजीकी 'आरोग्य-साधन' पुस्तक पढ़नी चाहिए ।

१० बीमारको दवा देनेसे ज्यादा जरूरत है उसके शरीर, मन और पेटको आराम देनेकी । इनमेंसे पेटको आराम देनेकी बातपर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है ।

११ अगर भूखमरीसे ही रोग न लगा हो तो रोगीको चाहे जो मर्ज हुआ हो, उसका पेट बिगड़ा न हो—ऐसा क्वचित ही होता है । इसलिए उसके पेटको हलका करना उपचारकका पहला काम है । इसके लिए बस्ति (एनिमा) देना पहला उपाय है, और अगर बुखार जोर का न हो तो एकाध जुलाब दिया जा सकता है । इसके साथ एक या दो लंघन करानेमें तो कोई हानि है ही नहीं । यदि बीमार बहुत कमजोर हो तो उसे अधिक उपवास कराये जाएं या नहीं, इसके लिए किसी अनुभवीकी सलाह लेना आवश्यक है । ऐसे सलाहकार मिलें या न मिलें पर इतनी बात तो अच्छी तरह समझ ही रखनी चाहिए कि जब बीमार-का खून रोगके जहरोंसे लड़ाई लड़ रहा हो उस समय भोजन पचानेका बोझा उसपर नहीं होना चाहिए और यदि उसे खुराक देनी ही पड़े तो वह हलकी-से-हलकी और सिर्फ प्राणधारण भरको ही होनी चाहिए ।

१२ गाय या बकरीके दूधको ऐसी हल्की खुराक कह सकते हैं। १० से २० तोला तक दूध बीमारीमें प्राण टिका रखनेको काफी समझा जा सकता है।

१३. पर बीमारी और लंघनमें भी रोगीको साफ पानी काफी मात्रामें पिलाना चाहिए । पानीके साथ सोडा बाईकार्ब और थोड़ा नमक देना अच्छा है। खट्टा नीबू भी साधारणतः दिया जा सकता है, और जड़ैया बुखारमें जब उल्टी होती हो या सिर दुखता हो तब नीबू जरूर देना चाहिए ।

१४. जड़ैया बुखारमें कुनैन देनी ही पड़े ऐसा हो सकता है । पर ऊपर बतायी हुई सावधानी रखी जाय तो आम तौरसे डाक्टर जिस बड़ी मिकदारमें देते हैं उसकी जरूरत नहीं पड़ती। कुनैनको नीबूके रसमें

दवाओंके साथ लेनेसे कम नुकसान करनेकी संभावना रहती है।

१५. बुखार बहुत तेज हो और उसे जल्दी उतारना इष्ट हो तो भीगी चादरका उपाय किया जा सकता है। यह उपाय 'आरोग्य-साधन' पढ़कर समझ लेना चाहिए।

१६. बुखार मीयादी न हो फिर भी बीमारी बहुत दिनों तक बनी रहे तो समझना चाहिए कि हवा-पानी बदलनेकी जरूरत है और बीमारको दूसरे प्रकारकी आबहवामें ले जाना चाहिए। आरोग्यके लिए प्रसिद्ध स्थानों-की ही तलाश की जाय यह जरूरी नहीं है।

१७. ऊपर बताये गये इलाज आकस्मिक बीमारियोंके लिए हैं। पुराने-लंबे रोग जैसे क्षय, कोढ़, रक्तपित्त आदिका इलाज भी इन तरीकोंसे किया जा सकता है, पर उनमें अनुभवी व्यक्तिकी सलाह और धीरजकी जरूरत होती है।

१८. दवाका सहारा लेनेकी आदत बुरी है। कोई पुराना रोग दवासे मिटता ही नहीं यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है।

१९. डाक्टरोंको चाहिए कि रोगियोंको सीधे-सादे उपचार सिखायें और दवापर उनका विश्वास न जमायें।

२०. डाक्टरोंको दवापरका विश्वास अक्सर वैसा ही अंधविश्वास होता है जैसा ओझा-सोखाके जंतर-मंतर और झाड़-फूंक आदिपर होता है। रोगीको अच्छा करनेवाली तो उसके खूनमें मौजूद कुदरती प्राण-शक्ति ही है। रोगसे वह शक्ति हार न जाय तो रोगी बच जाता है। उसे हारने न देनेके लिए ऊपर बताये हुए उपचारोंको काफी समझना चाहिए। फिर भी रोगी न बचे तो समझना चाहिए कि उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी। डाक्टरों और झाड़-फूंकवालोंके पीछे दौड़-धूप और पैसोंकी बरबादी न करनी चाहिए।

२१. सोडा बाइकार्बको दवा मान लो वह और कभी रेंडीके तेल जैसा जुलाब तथा कुनैन और बाहरी उपचारके लिए आयोडिन—इससे

अधिक दवाइयां रखनेकी ग्राम-सेवकको जरूरत नहीं है, यह कह सकते हैं । इनके अलावा यदि बस्ति (एनिमा) का साधन उसके पास हो तो समझ लेना चाहिए कि उसका औषधालय काफी हो गया ।

८

आहार

१ मांसाहारकी मनुष्यको कोई आवश्यकता नहीं है ।

२. हिंदुओंका पतन मांसाहार छोडनेके कारण हुआ है यह खयाल भ्रम-भरा और असलियतसे भी दूर है, क्योंकि हिंदू राजाओं और सैनिक जातियोंने बहुत समयतक मांसाहार छोड दिया हो ऐसा नहीं जान पडता ।

३ यह माननेके लिए कोई कारण नहीं है कि मांसाहार न करनेवाली जनता शरीरसे काफी सशक्त, निरोग और बहादुर नहीं हो सकती ।

४ निरामिष आहारका समर्थन करते हुए भी मांसाहारीसे द्वेष करना उचित नहीं । हिंदुस्तानमें बहुतेरी जातियोंको तो महज गरीबीके कारण ही मांसाहार करना पडता है ।

५ दूध भी मांस ही है तथापि उसमें प्राणीवध-रूपी हिंसा नहीं है इतना फर्क है । चित्तशुद्धिमें दूध का आहार विघ्नरूप है ।

६ पर निरामिष-भोजी हिन्दू जनताके लिए दूधके बदले कोई दूसरी वनस्पतिजन्य खुराक नहीं बतलाई जा सकती जो पूरा पोषण देनेवाली हो । अतः दूधको अपवाद किये बिना चारा नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि दूध सबको मिल सके इसका उपाय करनेकी जरूरत है ।

७. निरामिषाहारमें फल अथवा बिना रांधी खुराक कुदरती होनेके कारण श्रेष्ठ है । दूसरे सब प्राणी कुदरतकी तैयार की हुई खुराक उसके मूल-स्वरूपमें ही खाते हैं । मनुष्यके इसमें अपवाद होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता ।

८ तथापि इस कुदरती स्थितिसे पतित होकर हमने रांधनेका जंजाल ऐसा उठा लिया है कि मनुष्य-जातिका बडा भाग अब केवल प्राकृतिक भोजन-

पर निर्वाह करनेके अयोग्य-सा हो गया है और जो खुराक स्वाभाविक रूपसे ली जा सकनी चाहिए वह अब कुशल अन्नशास्त्रीकी सलाहके बिना ग्रहण नहीं की जा सकती, ऐसी हालत हो गयी है।

९ इससे राधना बहुतोके लिए अनिवार्य हो गया है। तथापि रांधनेका अर्थ बफाना, सेकना और भूनना यही होना चाहिए। पर मनुष्यने इतनेसे ही संतोष नही किया। रधनेके सुधार (या बिगाड) के स्वीकारके बाद वह जीभकी उपासनामें फसा और अनेक मसाले और पकवानके प्रकार खोज निकाले। शरीरके निर्वाहके लिए दवाके तौरपर ही जिसकी जरूरत समझी जानी चाहिए थी वह वस्तु जीवनका एक महत्वका व्यवसाय बन गयी है और उसके पीछे जीवनका बडा समय और शक्ति बरबाद होती है।

१० आरोग्यकी दृष्टिसे, विकारोकी दृष्टिसे, और समयकी दृष्टिसे भी मसालो और विविध प्रकारके व्यजनोका उपयोग दोषरूप और त्याज्य है।

११ साग-तरकारी और फल हम हिन्दुस्तानमे जितना खाते हैं, उससे अधिक परिमाणमे खानेकी आवश्यकता है। विशेष करके टमाटर, मूली, ककडी आदि तरकारिया तथा पत्र-शाक बिना पकाये खाना जरूरी है। खुराकमें दालकी अपेक्षा सब्जी—खासकर बिना पकायी ताजी हरी सब्जी—की ज्यादा जरूरत है।

१२. चाय और कहवा (काफी) बिल्कुल नये व्यसन हैं। ऐसे किसी पेयकी हम लोगोको आदत ही नही थी। इन पेयोंसे कोई लाभ नही हुआ है। ये दोनो हानिकारक पदार्थ हैं। चायकी खेती मानव-हिंसा से भरी हुई है। इन पेयोंने भोजन-खर्च व्यर्थ बढा रक्खा है। इनकी बदौलत देहातमें दूध रहने नहीं पाता और चीनीके उपभोगमें हानिकारक वृद्धि हुई है।

१३ कितने ही अनुभवियोंका मत है कि चाय, कहवे, तमाखू, भांग, गांजे, अफीम वगैराका कोई व्यसनी स्विरवीर्यताका दावा करे तो वह माना नहीं जा सकता।

९
व्यायाम

१ बचपनसे जिसे आवश्यक शारीरिक श्रम करना पड़ता है उसे अखाड़ेकी कसरतोंकी क्वचित् ही जरूरत होती है।

२ अखाड़ेकी कसरतें खास करके बैठकर करनेके धंधे करनेवालों, सिपाहीगिरी करनेवालों और उदर-निर्वाहके लिए पहलवानी करने वालोंके लिए है।

३ अखाड़ेकी कसरतोंसे मनुष्य दीर्घायु और निरोग अथवा बहादुर और श्रम-सहिष्णु बनता ही है ऐसा नहीं देखा जाता। ऐसे बहुतसे कसरती देखनेमें आते है जो शरीरसे पहलवान होते हुए भी हृदयके कायर हैं और कसरतके सिवा दूसरे शारीरिक कष्ट तथा सर्दी-गर्मीके प्रभावोंसे ढीले पड़ जाते है।

४ अखाड़ेकी कसरतें विकारवर्द्धक हैं, क्योंकि उनके परिणाम-स्वरूप साधारणतः शरीरमें गरमी बढ़ती है और भोजन तथा भोगकी शक्ति वेगवान हो जाती है।

५ फिर भी अखाड़ेकी कसरतोंका एक बारगी निषेध करना अभीष्ट नहीं है। दूसरी तालीमोंकी तरह उनका भी मर्यादित स्थान है।

६ सघ-व्यायाम—कवायद—बहुत उपयोगी तालीम है और उसकी सब युवक-युवतियों को जरूरत है।

७ सात्त्विक कसरतोंमें शरीरकी तंदुरुस्तीके लिए महत्त्वकी कसरत चलना है। यह जो व्यायामोंका राजा कहा गया है वह यथार्थ है।

८ इसके बाद आसन और प्राणायाम सात्त्विक व्यायाम माने जा सकते हैं, क्योंकि इन व्यायामोंका प्रधान उद्देश्य शरीरको भोगी नहीं बल्कि शुद्ध बनाना है। इनसे कितनी ही बीमारियां भी दूर होती हैं।

९ पर इन व्यायामोंको भी जीवनका व्यवसाय बनाना और उनसे सिद्धियां मिलनेकी जो बात कही जाती है उसके पीछे पड़ना इनका दुरुपयोग

है। शरीरमें संचित अशुद्धियोंको जैसे मल-मूत्र द्वारा निकाल डाला जाता है वैसे ही उसकी अन्य अशुद्धियोंको आसन और प्राणायाम द्वारा निकाल डालना, यही इन व्यायामोंका प्रयोजन है।

खण्ड ११ :: शिक्षा

१

शिक्षाका ध्येय

१ सा विद्या या विमुक्तये। जो मुक्तिके योग्य बनाये वह विद्या, बाकी सब अविद्या।

२ अत जो चित्तकी शुद्धि न करे, मन और इंद्रियोंको वशमें रखना न सिखाये, निर्भयता और स्वावलम्बन पैदा न करे, निर्वाहका साधन न बताये और गुलामीसे छूटने और आजाद रहनेका हौसला और सामर्थ्य न उपजाये उस शिक्षामें चाहे जितनी जानकारीका खजाना, तार्किक कुशलता और भाषा-पाण्डित्य मौजूद हो वह शिक्षा नहीं है या अधूरी शिक्षा है।

२

अराष्ट्रीय शिक्षा

१ ८०-८५ फी सदी लोगोंके जीवनकी आवश्यकताओंका विचार करनेके बजाय मुट्ठीभर मनुष्योंकी आवश्यकताओं अथवा राज्यके थोड़ेसे विभागोंकी आवश्यकताओंको ही ध्यानमें रखकर दी जानेवाली शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा तो हो सकती ही नहीं, बल्कि गलत शिक्षा होनेसे अविद्या ही है।

२ ऐसी शिक्षाने शिक्षित और अशिक्षितके बीच गहरी खाई खोद दी है, और विद्वानोंको जनताका अगुआ, पथ-प्रदर्शक और प्रतिनिधि बनानेके बजाय जनतासे विलग हो जानेवाला, जनताके जीवन और भावनाओंको न समझनेवाला, उसमें दिलचस्पी न ले सकनेवाला और उनका पक्ष उपस्थित करनेके अयोग्य बना दिया है।

३. इस शिक्षाने अपना महत्त्व बढ़ानेके लिए भवनों, साधनों, पुस्तकों, मृगतृष्णाकी भांति दूरसे लुभावने लगनेवाले लाभोंकी आशाओं और चटक-मटक वगैराका आडंबर रचकर जनताको कर्जमें डुबो दिया है ।

४. इस शिक्षाने लोगोंके अन्दर अनेक वहम पैदा कर दिये हैं । जैसे अक्षर-ज्ञान और शिक्षा एक ही है और उसके बिना शिक्षा हो ही नहीं सकती, शिक्षित मनुष्यका मजदूरका-सा जीवन बिताना तो अपनी शिक्षाको लजाना समझा जायगा, 'शिक्षित' का मतलब है अंग्रेजी पढ़ा हुआ आदि ।

५ इस शिक्षाने जनताको धर्मसे विमुख किया है, और अनेक पीढ़ियोंसे पोषित धर्म तथा संयमके संस्कारोंको मिटा डालनेका ही काम किया है ।

६. चित्त-शुद्धिके महत्त्वके अंग—ईश्वर, गुरु, बड़े-बूढ़ोंमें भक्ति, नीतिमय जीवनका आग्रह और संयम तथा तपमें श्रद्धा—इन सभी विषयोंमें आधुनिक शिक्षाने पढ़े-लिखोंको सशंक और नास्तिक बना देनेकी दिशामें यत्न किया है ।

७ यदि पूर्वोक्त परिणामोंसे कुछ लोग बच गये है तो वह शिक्षाके कारण नहीं बल्कि वैसी शिक्षा पाकर भी घरके उच्च वातावरणकी बदौलत बचे है ।

८ इस शिक्षाने भोग और सम्पत्तिमें इतनी श्रद्धा उत्पन्न करदी है कि उनके कम होनेके डरसे ही शिक्षित पस्तहिम्मत हो जाते है और स्पष्ट रूपसे दिखाई देनेवाले धर्मके आचरणमें असमर्थता प्रकट करते है ।

३

राष्ट्रीय शिक्षा

१. हिंदुस्तानकी राष्ट्रीय शिक्षाकी व्यवस्था हिंदुस्तानके ८० से ८५ फीसदी लोगोंको किस प्रकारका जीवन बिताना पड़ता है, इस विचारको सामने रखकर होनी चाहिए ।

२ हिंदुस्तानके ८५ फीसदी लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे खेतीसे गुजर करते है, इसलिए उनकी शिक्षाकी योजना उन्हें अच्छे किसान बना देने

और खेतीके आसपास चलनेवाले धंधोंकी जानकारी करा देनेकी दृष्टिसे होनी चाहिए।

३. शिक्षासे निर्वाहका प्रश्न हल होना चाहिए, अत उद्योग-धंधोंकी शिक्षा शिक्षणका प्रधान अंग होना चाहिए।

४ जनताके निर्वाहका मसला हल किये बिना संस्कार (Culture) या ईश्वरका ज्ञान देनेवाली शिक्षाकी बात करना बेकार है।

५. ऐसी शिक्षा खेतमें या देहातमें ही दी जा सकती है—कस्बों या शहरोंमें यह शिक्षा नहीं मिल सकती।

६ इसके सिवा पढ़ना-लिखना आनेके पहले शिक्षा प्राप्ति हो ही न सकती हो तो हिंदुस्तानकी जनताको शिक्षित बनानेमें कई दशक लगेंगे।

७ पर अक्षर-ज्ञान (पढ़ने-लिखनेके ज्ञान) का विरोध न करते हुए भी यह कहना जरूरी है कि शिक्षा उसके बिना भी दी जा सकती है और दी जानी चाहिए।

८ लिखने-पढ़नेका ज्ञान न होते हुए भी मनुष्य गिनना सीख सकता है, अपने उद्योग-धंधे-सम्बन्धी प्राथमिक विज्ञान प्राप्त कर सकता है, साहित्य समझ सकता है, सुन सकता है और कंठ कर सकता है, और शक्ति-शाली हो तो रचना भी कर सकता है। इसके सिवा उसमें सत्यकी लगन हो तो ईश्वरका ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है।

९. हमारे सैंकड़ो पढ़े-लिखोंका ज्ञान-भंडार—अनेक पोथियोंके पन्ने उलटनेके बाद भी—इतना अल्प होता है कि इतनी पूंजी प्राप्त करनेके लिए लाखों लोगोंको लिखना-पढ़ना सीखनेकी माथापच्चीमें पड़नेकी सलाह देनेके बजाय यदि वे अपना ज्ञान उन्हें जबानी दें तो देखेंगे कि बहुत वर्षों की पढ़ाई वे थोड़े ही वक्तमें जनतातक पहुंचा सकते हैं।

१०. इसके सिवा भारतवर्षकी शिक्षाकी पद्धति बिना खर्चकी ही होनी चाहिए।

११. अतः थोड़े वर्षोंमें यह शिक्षा पूरी हो जानेका मोह हमें न

होना चाहिए । उद्योग करते और आजीविका प्राप्त करते हुए यह शिक्षा जन्म-भर चल सकती है ।

१२. यह शिक्षा पुस्तकोपर कम-से-कम अवलम्बित होगी । इसका यह अर्थ नहीं कि पुस्तकें रहे ही नही, किंतु वाचनकी अपेक्षा यह श्रवण, दर्शन और क्रियाके द्वारा अधिक दी जानी चाहिए ।

४

उद्योग द्वारा शिक्षा

१ शिक्षाका आरम्भ अक्षर-ज्ञानसे और लेखन-वाचन द्वारा नही, बल्कि उद्योगसे और उसके द्वारा होना चाहिए।

२ उद्योग ऐसा होना चाहिए जिससे निर्वाह हो सके, उससे उत्पन्न होनेवाली वस्तु जनताके जीवनमे उपयोगी हो ।

३ ऐसी वस्तुका उत्पादन करते हुए उस उद्योगके साथ संबधित साहित्य, गणित, विज्ञान, चित्रकारी, इतिहास, भूगोल आदि आवश्यक विज्ञानोका जितना हो सके उतना ज्ञान बालकको करा देना चाहिए । इस प्रकार उद्योगको शिक्षाका केवल एक विषय ही नही बल्कि लगभग सारी शिक्षाका अर्थात् मानस-विकासका वाहन बनना चाहिए ।

४. इस तरह उद्योग द्वारा शिक्षा देनेवाली पाठशाला जब तक शिक्षकोंका खर्च न निकाल सके तब तक यह नही कहा जा सकता कि उस पाठशाला तथा उसके विद्यार्थियोने अच्छी प्रगति करली ।

५ खेती और वस्त्र ये दो भारतके राष्ट्रीय उद्योग है, अतः प्रत्येक पाठशालामें इन दोनो धधोकी प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबंध होना चाहिए ।

६. इन दोनो उद्योगोका प्रारंभिक ज्ञान सबके लिए अनिवार्य होना चाहिए, क्योंकि इनके द्वारा जिसे जीविका नहीं कमानी है उसके लिए भी पूर्ण शिक्षाकी दृष्टिसे इनका ज्ञान आवश्यक है ।

७. बढ़ई, लुहार, रगरेज आदिके धंधे खेती और वस्त्र-उद्योगके सहायक-

रूपमें और उनके सहारे चलते हैं। इसलिए हरएक किसान और बुनकरको इनका भी सामान्य ज्ञान करा देना चाहिए।

८. गन्ने, नील, तेलहन आदिकी खेती तथा आस-पासके जंगलोंमें होनेवाली वनस्पतियोंसे अनेक प्रकारके उद्योगोंका पोषण हो सकता है। इन उद्योगोंकी खोज करके उनकी भी शिक्षा उन स्थानोंमें देनी चाहिए।

५

बालशिक्षा

१. बालकोंकी शिक्षाका श्रीगणेश अक्षर-ज्ञानसे नहीं बल्कि सफाईकी शिक्षासे होना चाहिए।

२ शिक्षक (बल्कि शिक्षिका) को चाहिए कि बालकको ककहा-कक्की सिखानेकी जल्दी न करें, बल्कि उसे अपने हाथ, पांव, नाक, आंख, दांत नाखून आदिको साफ रखना सिखाये। उसे नहाना, कपड़े धोना, तथा रूमाल से नाक वगैरा पोंछना सिखाये।

३ इसके बाद वह बच्चेके हाथमें तकली और चरखा दे और कातनेतककी सब क्रियाएं धीरजसे बताये और उनकी मश्क करा दे।

४ इसके सिवा जबतक लिखना-पढ़ना न आये तबतक वह उसे अज्ञान नहीं बनाये रक्खे, बल्कि कहानियों द्वारा इतिहास भूगोलका ज्ञान दे, कथाओं और भजनों द्वारा धर्मका ज्ञान दे, प्रत्यक्ष अवलोकनसे पदार्थ-विज्ञान, वनस्पतियों और भूमि तथा आकाशका ज्ञान दे एवं प्रत्यक्ष पदार्थोंसे गणितमें प्रवेश कराये और इस तरह लिखना-पढ़ना आनेके पहले उसे तीसरी-चौथी पोथीतकका ज्ञान करा दे।

५. इसके सिवा अक्षर सिखानेके पहले उसे चित्र और अक्षरोंकी आकृतियां बनाना तथा अपने विचारोंको चित्रोंके द्वारा प्रदर्शित करना सिखाये।

६. अनेक भजन, श्लोक, कविताएं उसे कण्ठाग्र कराके उच्चार-शुद्धि करा ले और नाना प्रकारका साहित्य उसे पाठ करा दे।

७ फिर वह उसे सुंदर आकृतिवाले और स्पष्ट पढ़े जा सकनेवाले अक्षर लिखना सिखाये। इस प्रकार अक्षर लिखानेमें की हुई देरसे नुकसान न होकर बच्चेकी शक्ति बढ़ी मालूम होगी।

६

ग्रामवासीकी शिक्षा

१. इस वहमको दिमागसे निकाल डालनेकी जरूरत है कि देहातके बड़ी उम्रके सभी मनुष्य अक्षरज्ञान पाकर ही शिक्षा प्राप्त कर सकते है।

२ जिनमें शक्ति और उत्साह हो उन्हें अक्षरज्ञान करानेका प्रयत्न करना इष्ट है। उन्हे प्रोत्साहन देना चाहिए और उनके लिए पूरी सुविधा भी करनी चाहिए।

३ पर बहुतसे आदमियोको बडी उम्रमें लिखना-पढना सीखनेमें रस आना कठिन है। अत: ऐसा न होना चाहिए कि ऐसे लोग प्रौढ-पाठशालाओमें आ ही न सकें।

४ देहातका पुस्तक-भडार सीमित ही रहेगा और देहातियोकी पुस्तक खरीदनेकी शक्ति तो उससे भी कम होगी, अत थोड़ा-बहुत लिखना-पढना आजानेसे अपने-आप ज्ञान बढा लेनेकी बहुत शक्ति आजाती हो ऐसा अनुभव नही होता।

५ अत: जो पढ़े है वे दूसरोको पढ़ाकर सिखायें और समझायें तथा उनके लिए व्याख्यान वगैराकी व्यवस्था करें तो देहातमें पढेके लिए अपना ज्ञान बढ़ानेकी जितनी संभावना है उतनी बेपढेके लिए भी हो सकती है।

६ पढना-लिखना आनेसे समझनेकी शक्ति बढती है, ऐसी बात नही है। अक्सर बुद्धिमान देहाती सुनकर जो ज्ञान पा लेता है वह पढ़े हुए आदमीकी अपेक्षा अधिक होता है।

७. ज्ञानका मूल स्रोत पुस्तकोमें नहीं है बल्कि अवलोकन, अनुभव, विचार-चिंतनमें है—इसे भूल जानेसे हम पुस्तकके ज्ञानीको बहुत महत्त्व देते हैं।

७

स्त्री शिक्षा

१ पुरुषकी भांति स्त्रीको भी शिक्षाका पूरा अधिकार है। और पुरुषको जैसी शिक्षा पानेकी अनुकूलता हो वैसी स्त्रीको भी होनी चाहिए।

२. पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका दर्जा और अधिकार कम है इस संस्कारको निर्मूल कर देना चाहिए।

३. पुरुष-जैसी शिक्षा पानेमें स्त्रीके लिए रुकावट नहीं होनी चाहिए, तथापि ९० फीसदी स्त्रियोंको मातृपद प्राप्त करना और घर-गृहस्थीके काम में पड़ना होगा इसका खयाल रखकर स्त्री-शिक्षाकी योजना होनी चाहिए।

४ अर्थात् जैसे जिस पुरुषको किसान या बुनकर न बनना हो उसे भी ८५ फीसदी लोगोंके धंधेका प्राथमिक ज्ञान होना चाहिए वैसे ही जिस स्त्रीको मातृपद प्राप्त न करना या गृहस्थी न चलानी हो उसे भी मातृपद तथा गृहिणी-कर्मसे संबंधित शिक्षा मिलनेकी जरूरत है।

८

धार्मिक शिक्षा

१ धार्मिक शिक्षासे रहित शिक्षा नामकी अधिकारिणी ही नहीं समझी जा सकती।

२. प्रत्येक बालकको जिस धर्ममें वह जन्मा हो उस धर्मके मुख्य ग्रंथों, महापुरुष और संतों तथा उस धर्मके मन्तव्योंका श्रद्धापूर्वक ज्ञान करा देना चाहिए।

३ यहां धर्मोंका अर्थ वैदिक, इस्लाम, ईसाई, यहूदी, पारसी, सिख, जैन, बौद्ध इत्यादि मुख्य धर्म ही समझना चाहिए, उनके संप्रदाय या उपशाखाओंका समावेश उसमें नहीं होता। संप्रदायों और उपशाखाओंके संस्कार तो उनकी खास संस्थाएं ही दे सकती हैं।

४. बालकको उसके अपने धर्मके अलावा दूसरे महान् धर्मोंका भी समभाव-पूर्वक सामान्य ज्ञान देनेका प्रयत्न करना चाहिए।

५ मनुष्यको जैसे शरीरके लिए आहार, श्रम और आरामकी जरूरत है वैसे ही उसके चित्तकी उन्नतिके लिए धर्मके आलंबनकी आवश्यकता है। प्रत्येक धर्म ऐसे आलंबनकी पूर्ति करनेमें असमर्थ है, इसलिए किसीको धर्म बदलनेकी आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक धर्म मनुष्य-प्रचारित है इससे उसमें दोष है और पैदा भी होते रहते है, और उसे बारबार शुद्ध करनेकी जरूरत होती है, फिर भी कोई धर्म सर्वथा त्याज्य नहीं होता। धार्मिक शिक्षाके फलस्वरूप यह सस्कार उत्पन्न हो यह दृष्टि हमें रखनी चाहिये।

६ भिन्न-भिन्न मानव-समाजोमें भिन्न-भिन्न धर्मोंकी उत्पत्ति होनेके कारण उनमें समाज-रचना, विधि-विधान तथा रूढियोके परस्पर-विरोधी दिखाई देने-वाले भेद रहते हैं। फिर भी प्रत्येक धर्ममें इतनी बातें सामान्य रूपसे मिलती हैं—(१) सत्यरूपी परमेश्वरकी खोज और उसका आश्रय, (२) नीति-परायण तथा सयमी जीवन, (३) दूसरोके लिये कष्ट-सहन तथा स्वार्थ की अपेक्षा दूसरोका हित अधिक देखने की वृत्ति। इन सस्कारोका निरतर बडे क्षेत्रमें विकास होना धार्मिक जीवनका विकास है। अत धार्मिक शिक्षामे इन अंशोका महत्त्व समझाकर बाह्य भेदोको गौण समझना सिखाया जाना चाहिए।

९

शिक्षाका वाहन

१ उच्च-से-उच्च शिक्षा तकके लिए स्वभाषा ही शिक्षाका वाहन या माध्यम ना चाहिए।

२. अंग्रेजी जैसी अति विजातीय भाषाको शिक्षाका वाहन बना देनेसे शिक्षाके लिए किया गया और किया जानेवाला बहुतेरा श्रम व्यर्थ गया और जा रहा है।

३ अंग्रेजीके ज्ञानके बिना उच्च शिक्षा प्राप्त की जा सकती ही नहीं,

यह स्थिति दयनीय और लज्जाजनक है ।

४. शिक्षा घर और गांवों तक नहीं पहुंच सकी इसका एक कारण यह भी है कि वह स्वभाषाके द्वारा नहीं मिली ।

५ अंग्रेजीके शिक्षाका वाहन बना दिये जानेसे देशकी भाषाओंकी वृद्धि नहीं हुई और शिक्षितोंकी स्वभाषा-सेवाका प्रायः इतना ही फल हुआ है कि अंग्रेजीमें किये हुए विचार संस्कृत या फारसीमें अनुवाद करके स्वभाषाके प्रत्यय लगाकर काममें लाये जायें । इससे यह साहित्य आम जनतामें अधिक नहीं पहुंच सका और न उसपर असर डाल सका है ।

६ पर-भाषाके वाहन बननेका दुष्परिणाम हुआ है कि बहुतेरे शिक्षित जन विचार भी अंग्रेजीमें ही कर सकते हैं स्वभाषामें कर ही नहीं सकते । यह स्थिति खेद-जनक है ।

७ गुजरात विद्यापीठ जैसी छोटी-सी संस्थामें भी गुजरातीको शिक्षाका वाहन बना देनेसे गुजराती भाषाकी कितनी समृद्धि हुई है, पिछले कुछ वर्षों-का साहित्यका इतिहास इसका निदर्शक है ।

८ लोकमान्यके मराठी भाषाके द्वारा ही अपने प्रांतकी सेवा करनेसे उस भाषाकी जो समृद्धि हुई है वह भी इसी बातकी गवाही देती है ।

१०
अंग्रेजी भाषा

१ अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके बिना शिक्षा अधूरी रहती है इस वहमसे निकलने-की जरूरत है ।

२. अंग्रेजी पढ़े लोगोंका कर्तव्य है कि अंग्रेजी भाषाके विशाल साहित्यसे सुन्दर रत्न चुन-चुनकर अपनी-अपनी भाषामें लावें । इन रत्नोंका आनंद लेनेके लिए लाखोंको अंग्रेजी भाषा सीखनेके झंझटमें पड़नेको कहना निर्दयता है ।

३. काम-काजमें अंग्रेजी भाषाकी जरूरत पड़ती है यह सही है,

पर ऐसे काम-काज तो मुट्ठीभर आदमियोंको ही करने पड़ते हैं। फिर उनमेंसे बहुतसे काम तो अकारण अथवा हमारी गुलामीकी वजहसे ही अंग्रेजीमें होते हैं। थोड़ेसे अंग्रेज अधिकारियोंको देशी भाषा सीखनेकी मेहनतसे बचानेके लिए सारी जनतापर अंग्रेजी सीखनेका बोझ लादना, यह भी देशकी ओर से ब्रिटिश राज्यको दिया जानेवाला एक प्रकारका भारी कर ही है।

४ अंग्रेजी भाषाको अनिवार्य बनाकर ब्रिटिश राज्यने अपनी जड़ मजबूत की है, और भाषाकी गुलामी स्वीकार कराके जनताको शरीरसे ही नहीं मनसे भी गुलाम बना दिया है। हथियार छीन लेनेसे जनताको जो हानि हुई है उतनी ही या उससे रत्तीभर अधिक ही हानि उसपर अंग्रेजीको लादनेसे हुई है।

५. अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके बिना देशके महत्त्वके कामोंमें भाग नहीं लिया जा सकता, इस तरह उसकी शिक्षा जो अनिवार्य-सी कर दी गई है वह शिक्षा-शास्त्र तथा नीतिकी दृष्टिसे अत्यन्त हानिकर है।

६ यूरोपकी विद्या सीखनेके लिए यूरोपकी किसी भाषाका ज्ञान आवश्यक माना जाय तो उतने उपयोगके लिए जितना ज्ञान जरूरी है उसके लिए आज जितना समय और साल देने पड़ते हैं उतने न देने पड़ेंगे। इस भाषा-ज्ञानका लक्ष्य तो उस भाषाको समझ लेने भर सीख लेना होगा। आज तो अंग्रेजी भाषाके लेखन और उच्चारणपर अधिकार करनेके लिए इतना प्रयास किया जाता है मानो वह अपनी मातृभाषा या उससे भी अधिक महत्त्व रखनेवाली वस्तु हो। और अनेक वर्षोंतक मेहनत करनेके बावजूद अधिकांश तो टूटी-फूटी अंग्रेजी लिखने-बोलने लायक ही अधिकार प्राप्त कर पाते हैं।

७ हम स्वभाषा या पड़ोसी प्रांतकी भाषाको शुद्ध बोल-लिख न सकें तो न शर्मायें और अंग्रेजी भाषामें होनेवाली भूलोंसे शर्मायें अथवा वैसी भूलें करनेवालोंका मजाक उड़ायें, इससे पता चलता है कि उस

भाषाने, हमपर कैसा जादू डाल रक्खा है। वास्तवमें अंग्रेजीके अत्यंत विजातीय भाषा होनेके कारण उसके उच्चारण और लेखनमें हमसे गलतियां हों तो इसमें कोई अचरजकी बात नहीं।

८ पर इस जादूके कारण हम शिक्षाकालके आधे या बहुतसे बरस इस भाषापर अधिकार पानेके पीछे बर्बाद कर देते हैं। विद्यार्थीके कितने ही श्रम और समयका इस प्रकार अपव्यय होता है।

११

भाषा-ज्ञान

१ व्यवस्थित शिक्षामें भाषाके विषयोंमें पहला स्थान स्वभाषाको मिलना चाहिए। स्वभाषामें शुद्ध लिखना, पढ़ना, और बोलना आये बिना अंग्रेजी जैसी अति विजातीय भाषाकी शिक्षा आरंभ होनी ही न चाहिए।

२ स्वभाषाके बाद दूसरा स्थान राष्ट्रभाषा यानी हिंदुस्तानीका होना चाहिए। इसके विषयमें आगे अधिक कहा जायगा।

३ तीसरा स्थान मूलभाषाको मिलना चाहिए। मूलभाषाका अर्थ हिंदू विद्यार्थियोंके लिए संस्कृत, मुसलमान विद्यार्थियोंके लिए अरबी या फारसी, पारसियोंके लिए पहलवी इत्यादि। स्वभाषा और स्वधर्मकी जड़ इन भाषाओंमें होनेके कारण इनके ज्ञानका बहुत महत्त्व है और सम्यक् शिक्षा प्राप्त मनुष्यको इनका साधारणतः अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

४. भाषाएं सीखनेकी जिनमें शक्ति और रुचि है उनके लिए हिंदुस्तानकी कुछ प्रांतीय भाषाएं सीखना भी आवश्यक है। खास करके द्राविडी भाषाओंमेंसे एकाधको सीखनेका प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत-मूलक भाषाओंमेंसे तो एकाध आनी ही चाहिए।

५. शिक्षाकी दृष्टिसे अंग्रेजीका नंबर इसके बाद आता है। पर

व्यावहारिक दृष्टिसे उसका मूल्य अधिक आंका गया है; फिर भी उसका स्थान स्वभाषा, राष्ट्रभाषा और मूलभाषाके बाद ही होना चाहिए।

१२

राष्ट्रभाषा

१ हिन्दुस्तानी—अर्थात् हिन्दी और उर्दू दोनोंकी खिचडी—दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग जैसे शहरोंमें आम लोगोंमे बोली जानेवाली भाषा हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा है। दक्षिण भारतकी जनता के सिवा यह साधारणतः सारे देशमें सैकडों वर्षोंसे बरती जा रही है।

२ हर शिक्षित मनुष्यको यह भाषा शुद्ध रूपमें बोलना, लिखना और पढ़ना आना चाहिए।

३ यह भाषा नागरी और उर्दू दोनो लिपियोंमें लिखी जाती है, दोनो लिपियोंका ज्ञान हरएक को होना इष्ट है।

४ राष्ट्रभाषा सीखनेकी सलाह प्रांतीय भाषाको गौण बनानेके लिए नही दी जाती, उसकी आवश्यकता तो सार्वदेशिक व्यवहार के लिए है। हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषाका पद नया नहीं मिला है, बल्कि जो बात व्यवहारमें है उसीको स्वीकार किया गया है।

१३

इतिहास

१ इतिहास विषयकी शिक्षा गलत दृष्टिबिन्दुसे दी जाती है। अतः इतिहासके रूपमें पढ़ायी जानेवाली घटनाएं भले ही सच हो पर जनसमाजकी भूतकालकी स्थितिके बारे में वे गलत धारणा उत्पन्न कराती हैं।

२ राजवंशो की उथल-पुथल और युद्धों के वर्णन राष्ट्रका इतिहास नहीं है। हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्रका तो हो ही नही सकते। यह तो राष्ट्र-शरीरपर कभी-कभी उठ आनेवाले फफोलोंका-सा इतिहास माना जायगा। राष्ट्र-जीवनमें युद्ध नित्य-जीवन नहीं है किन्तु उत्कापात है। उसके नित्य-जीवन में

कमजोरियाँ, बाहरवालोंका फूट-फूटके लिए आक्रमण और सहयोग होता है। इसके द्वारा दुनियाकी प्रामाणिक वर्तमान इतिहास बहुत थोड़ेमें मालूम है और इस कारण वह भूतकालके सम्बन्धमें भ्रमात्मक चित्र प्रस्तुत करता है।

३. इस रीतिसे इतिहासकी जाँच की जाय तो उसके नित्य-व्यवहारमें हिंसामय कलहकी अपेक्षा अहिंसामय सत्याग्रहका प्रयोग अधिक हुआ दिखाई देगा।

४. पर इतिहासके शिक्षणमें इतना ही दोष नहीं है। आजकल तो इतिहासकी शिक्षा जान-बूझकर इस तरह दी जाती है जिससे गलत खयाल पैदा हो, इसलिए अंग्रेजोंके आनेके पहलेके कालका बहुत बुरा चित्र खींचा जाता है और अंग्रेजी-राज्यके प्रति जनता मोह-मुग्ध बनी रहे इसकी बचपनसे ही कोशिश की जाती है। इसमें असत्य ही नहीं बेईमानी भी है।

१४

शिक्षाके अन्य विषय

१. संगीतकी शिक्षापर हिंदुस्तानमें बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। संगीत चित्तके भावोंको जाग्रत करनेका बहुत बड़ा साधन है और इस प्रकार सात्त्विक संगीतका आध्यात्मिक विकासमें महत्त्वका स्थान है। बालककी इस महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक शक्तिका सात्त्विक रीतिसे विकास करना चाहिए।

२ कर्मेन्द्रियोंके और समूहोंके कार्यमें कवायदके ज्ञानके अभावमें अव्यवस्था, अनियमितता, आवश्यकतासे अधिक व्यय, गड़बड़ और शोरगुल तथा बहुत मौकोंपर जान-मालका नुकसान भी होता है। कवायदके ढंगसे ही उठने, चलने और काम करनेकी, और चार आदमियोंके इकट्ठा होते ही कवायदी ढंगसे व्यवस्थित होकर काम करनेकी आदत पड़ जानी चाहिए। अतः कवायदकी तालीमको और पाठशालाओंमें काफी ध्यान दिया जाना चाहिए और बड़ी उम्रके लोगोंको भी इसकी तालीम देनी चाहिए।

३ शस्त्रका त्याग हिंदुस्तानमें जबरन कराया गया है, हिंदुस्तानकी जनताने उसे अपनी इच्छासे नहीं किया है। शस्त्र धारण करने और सैनिक शिक्षा पानेका जनताको अधिकार है। इसलिए इसकी तालीम भी शिक्षाका आवश्यक विषय है।

१५

शिक्षक

१ शिक्षकका चरित्र चाहे जैसा हो, उसे केवल अपने विषयमें प्रवीण होना चाहिए—यह विचार दोषपूर्ण है।

२ चारित्रहीन पर प्रवीण शिक्षकसे पढ़कर विद्यार्थी किसी विषयमें प्रवीणता प्राप्त करे इससे यह हजारगुना अच्छा है कि वह चारित्रवान किंतु काम प्रवीण शिक्षककी शिष्यता स्वीकार कर थोडी ही विद्या प्राप्त करे।

३ जो शिक्षक अपना विषय पढानेकी जिम्मेदारी समझता है पर विद्यार्थीके चारित्रके विषयमें अपनी जम्मेदारी नहीं मानता उसे शिक्षक कह ही नहीं सकते।

४ आदर्श शिक्षकको विद्यार्थीकी पढाईमें ही नहीं बल्कि उसके सारे जीवनमे दिलचस्पी लेना और उसके हृदयमे प्रवेश करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

५ ऐसा शिक्षक विद्यार्थीको भयानक या यमराज जैसा नहीं लगेगा, बल्कि पूज्य होते हुए भी मातासे अधिक निकट मालूम होगा।

६ शिक्षकको अपनी योग्यता बढानेके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए, और अपने विषयमे ताजा-से-ताजा जानकारी प्राप्त करके और तैयार होकर ही क्लास लेना चाहिए।

७ अर्थात् शिक्षकको विद्यार्थीसे भी अधिक अच्छा विद्यार्थी-जीवन बिताना और अध्ययनरत रहना चाहिए।

८ पूरी तैयारी किये बिना क्लास लेनेवाला शिक्षक विद्यार्थीका अमूल्य समय बर्बाद करता है।

९ शिक्षकको पढ़ानेकी अच्छी-से-अच्छी रीति खोजते ही रहना चाहिए और प्रत्येक विद्यार्थीकी विशेषताको समझकर ऐसी विधि ढूंढ़ निकालनी चाहिए जिससे वह अपने विषयको समझने और उसमें रस लेने लगे। विद्यार्थियोंको शंकाका अवसर देकर उनका समाधान करना चाहिए।

१० मारने, गाली देने, तिरस्कार करने या और कोई सजा देनेकी शिक्षकोंको मनाही होनी चाहिए।

११ अपना काम भलीभांति करनेकी इच्छा रखनेवाला शिक्षक बहुत बड़े वर्गोंपर ध्यान न दे सकेगा यह स्पष्ट है।

१२ सैंकड़ों विद्यार्थियोंकी पाठशालाएं भी इष्ट नहीं है।

१६

विद्यार्थी

१ विद्याकी शोभा विनयसे है, इतना ही नहीं विनयके बिना विद्या आती भी नहीं।

२. विद्यार्थीको शिक्षकके प्रति गुरुभाव रखना अर्थात् श्रद्धा, विनय और सेवा-भावसे व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक जो कहता है मेरे हितके लिए कहता है, यह श्रद्धा उसे रखनी चाहिए।

३ शिक्षक ऐसी श्रद्धाके योग्य नहीं है यह निश्चय हो जाय तो विनयको न छोडकर शिक्षकका ही त्याग करना चाहिए।

४. विद्यार्थीको शिक्षकसे प्रश्न करके अपनी शंकाएं मिटानी चाहिएं।

५. विद्यार्थीको ऐसी अधीरता न दिखानी चाहिए मानो वह शिक्षकके पेटसे वह सारा ज्ञान निकाल लेना चाहता है। जिसने विनयसे शिक्षकका मन प्रसन्न किया है उसे अपना सारा ज्ञान देनेकी शिक्षकमें ही अधीरता उत्पन्न हो जाती है। जबतक शिक्षकका मन ऐसा नहीं हो जाता तबतक विद्यार्थीको धीरज रखना चाहिए।

६. पर शिक्षक जब ज्ञानकी वृष्टि करने लगे तब विद्यार्थीको गाफिल रहकर मौका गवाना नहीं चाहिए।

१७

छात्रालय

१ छात्रालयके मानी विद्यार्थीके रहने-खानेका सुभीता कर देनेवाला आसा नहीं है।

२ छात्रालयका महत्त्व पाठशालासे भी अधिक है। वह तो माता-पिताके घरकी जगह लेनेवाला ही न होना चाहिए, बल्कि माता-पिताके घरमें जो सस्कार नही मिल सकते उन्हें देनेकी अभिलाषा उसे रखनी चाहिए।

३ अत छात्रालयका गृहपति पाठशालाके आचार्य या वर्ग-शिक्षककी अपेक्षा भी अधिक योग्य व्यक्ति होना चाहिए। उसमें शिक्षकके सिवा माता-पिताके गुण भी होने चाहिए।

४ उसकी निगाह विद्यार्थियोके हरएक काम और सग-साथपर पडती रहनी चाहिए।

५ लडके जहा इकट्ठे रहते है वहा प्रकट और गुप्त दोष दिखाई देते रहते हैं। गृहपतिको इनके विषयमे बहुत चौकन्ना रहना चाहिए।

६ छात्रालयमें पक्तिभेद न होना चाहिए।

७ जहातक हो सके छात्रालयमें नौकर-चाकर न होने चाहिए और विद्यार्थियोको अपने निजी काम तो खुद ही करने चाहिए।

८ छात्रालयका खर्च उतना ही होना चाहिए जितना एक गरीब देशसे चल सके।

९ विद्यार्थियोको नियमित रूपसे मिष्टान्न मिलना ही चाहिए यह रिवाज अच्छा नही है।

१०. छात्रालयको सादगी, मितव्ययिता और सस्कारिताका नमूना होना चाहिए। छात्रालयमें जाकर विद्यार्थी अधिक छैल-छबीला, उडाऊ, और उच्छृखल होजाय तो कहना चाहिए कि वह छात्रालय सफल नही हो रहा है।

१८
शिक्षाका खर्च

१ शिक्षाका बहुत खर्चीली हो जाना यह बताता है कि शिक्षाकी दिशा गलत है।

२ शिक्षाकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षक और विद्यार्थी अपने अन्न-वस्त्रका खर्च तो अपनी मजदूरीसे ही निकाल ले सकें। सिर्फ मकान, साधनो आदिके खर्चके लिए ही जनतासे पैसा मागना पडे।

३ आज यह नहीं हो सकता, क्योकि शिक्षक और विद्यार्थी दोनोको मेहनतकी यथेष्ट शिक्षा नही मिली है और न आदत है। पर प्रयत्न इस दिशामे होना चाहिए इसमें शका नही।

४ बच्चोको जितनी शिक्षा अपने घरमें ही मिल सकती है उसे देनेके लिए पाठशालाको न फसना चाहिए। अत मा-बापको सस्कारी बना देनेसे शिक्षाका खर्च घटेगा।

५ जिसे प्राथमिक शिक्षा कहते है वह इस तरह अधिकाशमें घरमें ही मिल जानी चाहिए।

१९
उपसहार

[पूज्य गांधीजी ने स्वलिखित 'सत्याग्रहाश्रमका इतिहास' के शिक्षा-सबधी प्रकरणमे अपने मतका जिस रूपमें उपसंहार किया है वह, थोडा पुनरुक्ति दोष स्वीकार करके भी, यहां दे देना उचित जान पडता है।—लेखक]

शिक्षाके विषयमें मेरे विचार इस प्रकार हैं—

प्रथम काल

१. बालक और बालिकाओको साथ-साथ शिक्षा देनी चाहिए। बाल्यावस्था आठ वर्षतक समझनी चाहिए।

२. उनका समय ज्यादातर शारीरिक काममें लगवाना चाहिए और वह काम भी शिक्षककी देख-रेखमें होना चाहिए। शारीरिक काम शिक्षाका एक विभाग समझा जाना चाहिए।

३. प्रत्येक बालक-बालिकाका झुकाव परखकर उसे काम देना चाहिए।

४. हरएक काम लेते समय उसका कारण उन्हें बता देना चाहिए।

५. बच्चा समझने लगे तभीसे उसे साधारण ज्ञान दिया जाना चाहिए वह ज्ञान अक्षर-ज्ञानके पहले शुरू होना चाहिये।

६ अक्षर-ज्ञानको लेखन (चित्र)-कलाका विभाग मानकर पहले बच्चेको रेखा गणितकी आकृतिया बनाना सिखाना चाहिए और जब अगुलियो-पर उसका काबू जम जाय तब उसे अक्षर उरेहना सिखाना चाहिए। अर्थात् उसे पहलेसे ही शुद्ध अक्षर लिखाना सिखाना चाहिए।

७ लिखनेके पहले पढना सिखाना चाहिए। यानी वह अक्षरोको चित्र समझकर उन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र बनाये।

८. इस प्रकार शिक्षकसे जबानी ज्ञान पानेवाले बच्चेको आठ वर्षके अदर अपनी शक्तिके हिसाब से बहुत अधिक ज्ञान मिल जाना चाहिए।

९ बच्चेको जबर्दस्ती कुछ भी न सिखाना चाहिए।

१० जो कुछ वह सीखे उसमें उसे रस आना जरूरी है।

११ बच्चे को शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिए। खेल भी शिक्षाका आवश्यक अग है।

१२ बच्चोकी सारी शिक्षा मातृभाषाके द्वारा होनी चाहिए।

१३. बच्चोको हिंदी-उर्दू का ज्ञान राष्ट्रभाषाके रूपमें दिया जाना चाहिए। उसका आरभ अक्षर-ज्ञान के पहले होना चाहिए।

१४ धार्मिक शिक्षा आवश्यक समझी जानी चाहिए। वह बच्चेको पुस्तकके द्वारा नहीं बल्कि शिक्षकके आचरण और उसके मुखसे मिलनी चाहिए।

दूसरा काल

१५ नौसे सोलह वर्षतकका दूसरा काल है।

१६ दूसरे कालमें भी अलतक बालक-बालिकाओंकी शिक्षा साथ-साथ हो तो अच्छा है।

१७ दूसरे कालमें हिन्दू लड़कोंको संस्कृतकी शिक्षा मिलनी चाहिए, मुसलमानको अरबी की।

१८. इस कालमे भी शारीरिक काम तो चलना ही चाहिए। अक्षरज्ञान-का समय आवश्यकतानुसार बढ़ा देना चाहिए।

१९ इस कालमें बालकके मा-बापका धंधा यदि निश्चित हो चुका जान पड़े तो उसे उस धंधे का ज्ञान मिलना चाहिए और उसे इस तरह तैयार करना चाहिए जिससे वह पैतृक धंधे द्वारा अपनी रोजी कमाना पसंद करे। यह नियम लड़कीपर लागू नहीं होता।

२० सोलह वर्षकी उम्रतक बालक-बालिकाको दुनियाके इतिहास, भूगोल और वनस्पतिशास्त्र, खगोल, गणित, भूमिति और बीजगणितका सामान्य ज्ञान होजाना चाहिए।

२१ सोलह वर्षके बालक-बालिकाको सीना, रसोई बनाना सीखना चाहिए।

तीसरा काल

२२ सोलहसे पच्चीस तकका मै तीसरा काल मानता हू। इस कालमें प्रत्येक युवक या युवतीको उसकी इच्छा और परिस्थितिके अनुसार शिक्षा मिलनी चाहिए।

२३. नौ बरसके बाद शुरू होनेवाली शिक्षा स्वावलबी होनी चाहिए। अर्थात् विद्यार्थी शिक्षा पाते हुए ऐसे धधोंमें लगा हुआ हो जिनकी आमदनीसे पाठशालाका खर्च निकल आये।

२४ पाठशालामें आमदनी तो शुरूसे ही होनी चाहिए, पर पहिले बरसमें वह पूरा खर्च निकलने भर न होगी।

२५ शिक्षकोंकी तनख्वाह मोटी नही हो सकती, पर उन्हें पेट भरनेभर पैसा मिलना चाहिए। उनमें सेवावृत्ति होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षाके लिए चाहे जैसे शिक्षकसे काम चला लेनेका रिवाज निंद्य है। शिक्षक मात्रको चरित्रवान होना चाहिये।

२६ शिक्षकके लिए बड़े और खर्चीले मकानोकी जरूरत नही है।

२७ अंग्रेजीकी पढ़ाई एक भाषाके रूपमें होनी चाहिए और उसे शिक्षणक्रममें स्थान मिलना चाहिए। हिंदी जैसे राष्ट्रभाषा है वैसे अंग्रेजीका उपयोग परराष्ट्रोके साथ व्यवहार तथा व्यापार करनेके लिए है।

स्त्री-शिक्षा

२८ स्त्रियोकी विशेष शिक्षाका रूप क्या हो और वह कबसे आरंभ होनी चाहिए, इस विषयमें यद्यपि मैने सोचा और लिखा है पर अपने विचारोको निश्चयात्मक नही बना सका। इतनी तो मेरी पक्की राय है कि जितनी सुविधा पुरुषको है उतनी ही स्त्रीको भी मिलनी चाहिए और जहा विशेष सुविधाकी आवश्यकता हो वहा वैसी सुविधा मिलनी चाहिए।

प्रौढ़-शिक्षा

२९ प्रौढ वयको पहुचे हुए ऐसे स्त्री-पुरुषोके लिए जो निरक्षर है वर्ग (क्लास) की जरूरत तो है ही, पर उन्हे अक्षरज्ञान होना ही चाहिए यह मैं नही मानता। उनके लिए व्याख्यान आदिके द्वारा सामान्य ज्ञान पानेकी सुविधा होनी चाहिए और जिन्हें अक्षरज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो उनके लिए इसकी पूरी सुविधा होनी चाहिए।

खण्ड १२ : : साहित्य और कला

१

साधारण टीका

१. साहित्य और कलाको सत्य, हितकर और उपयोगीपनकी कसौटी पर पास होना ही चाहिए ।

२ सत्यको यहां व्यापक अर्थमें लेना चाहिए । तफसील अथवा घटनाओंकी सत्यताके अर्थमें नही किंतु सिद्धांत अथवा आदर्शकी सत्यताके अर्थमें लेना चाहिए । मिसालके तौरपर, हो सकता है कि हरिश्चन्द्र या रामकी कथा केवल काल्पनिक हो, पर इस कथासे निकलनेवाले सिद्धांत और आदर्श सत्य, हितकर और उपयोगी हैं, इसलिए इस कथाका साहित्य उक्त कसौटीपर पास हो जाता है ।

३ घटनाएं और वर्णन सच्ची और हूबहू तस्वीर पेश करनेवाले हों तो समुचित प्रकारका साहित्य या कला नही कहला सकते । बहुतसी घटनाएं सत्य होनेपर भी अहितकर और निरुपयोगी अथवा हानिकर होती हैं । उन्हें उपस्थित करनेवाला साहित्य और कला हानिकारक ही है—उदाहरणार्थ, वेश्याके घरका शब्दचित्र ।

४ अक्सर सत्य, नीति, धर्म इत्यादिकी अंतिम विजय बताते हुए भी उसके पहलेके असत्य, अनीति, अधर्म आदिके चित्र ऐसे बीभत्स रूपमें अंकित किये जाते हैं जिससे लोगोंकी हलकी वृत्तियोंको उत्तेजन मिलता है । ऐसा साहित्य और कला भी गंदी ही मानी जायगी ।

२

साहित्यकी शैली

१ कितना ही साहित्य ऐसा होता है जिसे विद्वान् या जिन्हें वह

परंपरासे अवगत हुआ है वही लोग समझ सकते हैं फिर भी वह उत्कृष्ट होता है यह सत्य है । पर साधारणत इसे साहित्यका गुण नही बल्कि दोष ही समझना चाहिए । विशेष कारण न हो तो साहित्यके उत्कृष्ट होते हुए भी साहित्यकारको जन-साधारणके समझने योग्य भाषा काममें लानेका प्रयत्न करना चाहिए ।

२. इसमे अपवाद हो सकते हैं जिनमेंसे कुछ यहा दिये जाते हैं—

(अ) भाषाके सरल और सुबोध होते हुए भी विषय नया, असाधारण कठिन और गंभीर विचारयुक्त हो तो वैसा साहित्य जन-साधारण दूसरेकी सहायताके बिना न समझ सके यह हो सकता है । उदाहरणार्थ गीताकी शैली इतनी सरल है कि साधारण सस्कृत पढ़ा मनुष्य भाषाकी दृष्टिसे उसे समझ सकता है, फिर भी साधारण मनुष्य सस्कृत जानते हुए भी उसका तात्पर्य ग्रहण नही कर सकता और उसे विद्वानोकी टीकाओका आश्रय लेना पडता है, कारण यह कि उसका विषय कठिन और विचार गहन हैं और केवल भाषाज्ञानके बलपर नहीं समझे जा सकते ।

(आ) इसी तरह शास्त्रीय ग्रथ भी जिनमे विशेष पारिभाषिक शब्दोका व्यवहार होता है जैसे—तर्कशास्त्र, कानून या वैद्यकके ग्रथ आम लोग न समझ सकें तो यह उन ग्रथोका दोष नही माना जायगा ।

(इ) मनोरजनके लिए रचित पहेलियो, समस्याओ, कबीर-जैसोके गूढ़ काव्यो, 'उलटी बानियो' वगैराका अर्थ बहुत करके परपरासे ही जाना जा सकता है । ऐसा साहित्य थोडा, ज्ञानदायक और निर्दोष हो तो उसका कोई विरोध न करेगा ।

(ई) पहले दो प्रकारके अपवादोमें बताये गये साहित्यमेंसे जन-साधारणके लिए जितना आवश्यक और उपयोगी हो उतना सरल भाषामें प्रस्तुत कर देना भी जिन लोगोंने उन विषयोमें प्रवीणता प्राप्त की है उनका एक फर्ज है ।

३

अनुवाद

१ दूसरी भाषाके उत्कृष्ट साहित्यका परिचय अपनी भाषा बोलने-वालोको करा देना भी साहित्यका एक उपयोगी अग है।

२ अच्छे अनुवादमें नीचे लिखे गुण होने चाहिए—

(अ) वह इतना सहज और सरल होना चाहिए मानो स्वभाषामें ही सोचा और लिखा गया हो। ऐसा नही कि जिस भाषासे अनुवाद किया गया हो उस भाषाके रूढि-प्रयोगो और शब्दोके विशेष अर्थ न जाननेवाले उसे समझ ही न सकें।

(आ) ऐसे रूढि-प्रयोग या मुहावरे अनुवादमें देने ही पड़ें, अथवा मूल शब्दका भाव स्पष्ट करनेके लिए शब्द गढने पड़ें या ऐसे दृष्टातो, रूपको या दत-कथाओका उल्लेख करना पड़े जिनसे अपनी भाषा बोलनेवाले लोग अपरिचित है तो उन्हें समझानेके लिए टिप्पणी लगा देनी चाहिए।

(इ) वह कृति ऐसी मालूम होनी चाहिए मानो अनुवादकने मूल पुस्तक-को हजम करके फिरसे स्वभाषामें उसे रचा हो।

(ई) मूल पुस्तक जिन खूबियोके कारण प्रसिद्ध हुई और उत्कृष्ट मानी गयी हो वे गुण यदि अनुवादमें न आयें तो वह अनुवाद निम्न कोटिका ही माना जायगा।

(उ) साधारणत वह इतना प्रामाणिक होना चाहिए कि मूल पुस्तकके बदले उसका प्रमाण दिया जा सके।

३ इस कारण स्वतत्र पुस्तक लिखनेकी अपेक्षा अनुवादका काम सदा सरल नही होता। मूल लेखकके साथ जो पूरा-पूरा समभावी और एकरस नहीं हो सकता और जो उसके मनोगतको पकड न पाये उसे उसका अनुवाद नहीं करना चाहिए।

४ अनुवाद करनेमें भिन्न-भिन्न प्रकारका विवेक करना होता है। कुछ

पुस्तकोका अक्षरश अनुवाद करना आवश्यक माना जा सकता है, कुछका सार मात्र दे देना काफी समझा जायगा, कुछका भाषातर उन्हें ऐसा जामा पहनाकर करना चाहिए जिससे अपने समाजकी समझमें आ जाय, कितनी ही पुस्तकें ऐसी होती हैं कि अपनी भाषामें उत्कृष्ट मानी जाने पर भी हमारा समाज अतिशय विभिन्न होनेके कारण हमारी भाषामें उनके अनुवादकी आवश्यकता नही होती । कुछ पुस्तकोका अक्षरश उल्था होनेके बाद साररूप अनुवाद भी आवश्यक माना जा सकता है।

४

वर्ण-विन्यास

१ हिंदुस्तानीमें[1] वर्ण-विन्यास (हिज्जे) के विषयमे कुछ अराजकता-सी मच रही है । यह ठीक नही है ।

२ भाषाकी वृद्धिके साथ-साथ व्याकरण और वर्ण-विन्यासके नियमोमें थोडा-बहुत फेर-फार होता रहे, यह बात समझमें आ सकती है, फिर भी साधारण व्यवहारके शब्दो और उनके रूपोका व्याकरण तथा वर्ण-विन्यासके नियम निश्चित हो जाने चाहिए ।

३ कुछ इने-गिने शब्दोके वर्ण-विन्यासके बारेमे हरएक भाषामें विद्वानोमें कुछ मतभेद हो सकता है । लेकिन साधरण शब्दोके बारेमे विद्वानोको उचित है कि वे जनताको एक ही प्रकारका वर्ण-विन्यास स्वीकार करनेकी सलाह दें ।

४ वैसी सलाह देते समय प्रचलित रूढि, लिखने तथा छापनेका सुभीता, उच्चारणके नियम तथा व्युत्पत्ति—इन सभी बातोपर यथायोग्य ध्यान देना चाहिए, और कही एकको तो दूसरी जगह दूसरीको महत्त्व देनेकी आवश्यकता समझनी चाहिए । इस विषयमे यह दृष्टि रखनी चाहिए कि साधारण जनता हिज्जेके बारेमें उलझन मे न पडे ।

१—गाधीजी ने यह बात गुजरातीके विषयमे कही है, पर वह हिंदी-हिंदुस्तानीपर भी पूरे तौरसे घटित होती है ।—अनुवादक

५

अखबार

१ अखबार, मासिक-पत्र आदि भी साहित्य-कार्यके अग हैं, जनसाधारणको शिक्षित बनानेके एक जबर्दस्त साधन हैं।

२ पर इस साधनका अतिशय दुरुपयोग किया गया है। लोगोंको सच्ची खबरे और अच्छी सलाह देनेके बदले जान-बूझकर झूठी, आधी सच्ची आधी झूठी या अधूरी खबर देकर अथवा सच्ची खबरको गलत दृष्टि-बिंदुसे प्रस्तुत करके उन्हे गलत रास्तेपर ले जानेका काम समाचारपत्रो द्वारा बाकायदा किया जा रहा है।

३ विज्ञापनो द्वारा द्रव्य प्राप्त करनेके लोभमें ये अनेक प्रकारके झूठ और अनीति फैलानेका साधन बन रहे है।

४ जिस व्यक्तिको पढनेका शौक हो और फुर्सत भी हो पर गप्पें मारकर जल्दी वक्त गुजारनेके लिए कोई सगी-साथी न हो और इससे उसका जी ऊब रहा हो उसे ऊबने देनेमें कोई हर्ज नही। कुछ देर ऊबते रहनेके बाद फिर वह कोई काम खोजकर उसमें लग जायगा। पर केवल फुर्सतका वक्त काटनेके लिए ही निकला हुआ पत्र, मासिक या किस्से-कहानीकी किताब लेकर बैठेगा तो उससे मनोरजनका तो आभासमात्र होगा, अधिक समय परोक्ष रीतिसे गप्पें हांकने यानी आलसमें ही बीतेगा और अधिकतर वह अपने मनको हीन भावनाओसे चलायमान कर लेगा एव कुसस्कारोको पोसेगा। पत्रो, मासिको और उपन्यासोसे अनेक युवक-युवतिया विकारकी अवस्थामें पडे और कुमार्गमें प्रवृत्त हुए पाये गये हैं। ऐसे प्रकाशन जला देने योग्य ही माने जाने चाहिए।

५ पत्र या लेखनके व्यवसायमें सिर्फ उसी मनुष्यको पड़ना चाहिए [illegible] यह निश्चय हो गया हो कि उसे अपना अथवा दूसरे किसीसे प्राप्त कोई स[illegible] हितकर और उपयोगी सदेश देना है। उसे सत्यपर दृढतासे [illegible]

चाहिए और अपने खिलाफ जानेवाली सच्ची बातो और शिकायतोको भी प्रकाशित करना चाहिए तथा अपनी भूलोको शुद्ध भावसे स्वीकार करना चाहिए। विज्ञापनोंसे अपना खर्च निकालनेके लोभमें नही पडना चाहिए, बल्कि अपनी उपयोगिता सिद्ध करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि लोकप्रियताके बलपर ही उसका खर्च निकल सके। इसके लिए केवल मुट्ठीभर लोगोंकी ही आवश्यकताओंकी नही बल्कि समस्त जनता अथवा आम लोगोकी आवश्कताओं और विषयोकी चर्चा करनेवाला होना चाहिए।

६

कला

१ प्रकृतिके सौंदर्यके सामने मानव-निर्मित सब कलाओका सौंदर्य तुच्छ है। आकाश और पृथ्वीका सौंदर्य कला-रसिकको आनद देने के लिए काफी है। उस कलाका स्वाद जो नही ले सकता वह यदि मनुष्य-निर्मित कलाका शौकीन समझा जाता हो तो वह मोहक दृश्योको ही कला समझने वाला होगा। सच्ची कलाका उसे ज्ञान नही है।

२ सच्ची कला अच्छे साहित्यकी भाति विचारोको उपस्थित करनेका साधन है, और साहित्यकी शैलीके सबन्धमें जो विचार प्रकट किये गये है वे यथोचित रूपसे कलापर भी घटित होते हैं।

३. कलाका सबन्ध नीति, हितकरता और उपयोगितासे नही है, केवल सौंदर्यसे ही है—यह कहना सौंदर्य और कलाको न समझनेके जैसा है। सत्य ही ऊंची-से-ऊची कला और श्रेष्ठ सौंदर्य है और वह नीति, हितकरता तथा उपयोगितासे रहित नही हो सकता।

४. अत कलाका स्थान मनुष्य-जीवनके लिए उपयोगी साधन-सामग्रियोंमें होना चाहिए, और कलाके कारण वे पदार्थ सुदर लगनेके अतिरिक्त अधिक अच्छी तरह काम देनेवाले भी होने चाहिए।

५. जिस कलाके पीछे प्राणियोपर जुल्म, उनकी हिंसा, उत्पीडन आदि

हो उसमें बाह्य सौंदर्य कितना ही हो तो भी वह कला कलि अथवा शैतान का ही दूसरा नाम है।

६ जो कला मनुष्यकी हीन वृत्तियोंको उभारती और भोगोंकी इच्छाको बढ़ाती है वह कला गंदे साहित्यकी श्रेणीमें ही समझी जायगी।

खण्ड १३ : : लोकसेवक

१

लोकसेवकके लक्षण—सामान्य

१ लोकसेवक वह माना जाएगा, जिसने निर्वाहके लिए कोई धधा करना ही चाहिए इस खयालसे जनताकी सेवाका काम न उठाया हो बल्कि जनताकी सेवा करना ही उसके मनकी मुख्य अभिलाषा हो।

२ अपना सारा समय जन-सेवामे देते रहनेके कारण वह अपना निर्वाह उस कामके लिए स्थापित सस्थासे ही कुछ लेकर करे तो इसमे कोई दोष नही है। और ठीक तौरसे काम होनेके लिए ऐसे लोक-सेवकोकी आवश्यकता रहती ही है।

३ पर लोकसेवकके निर्वाहकी नीति दूसरे सेवकोकी अपेक्षा भिन्न होनी चाहिए। वह अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेकी लालसासे इस काममें नहीं पडा है इसलिए वह अपने वेतनमे वृद्धिकी आशा न रक्खे और अपनेपर दूसरोंके निर्वाहकी जम्मेदारी न बढे इसका भी यथासभव खयाल रक्खे। इसके सिवा उससे कुछ प्रत्यक्ष अथवा भावी आशाओके त्यागकी अपेक्ष भी रक्खी जा सकती है। कुछ बचा रखनेकी नियतसे वह अपना वेतन तय न करे बल्कि यह विश्वास रक्खे कि अडचनके समय ईश्वर उसे देगा ही।

४. मैंने कुछ त्याग किया है अथवा जनताका सेवक या आजीवनसेवक बन गया हू, इस बातका जिसे भान या अभिमान रहा करता है वह लोकसेवक होते हुए भी क्षुद्रताका परिचय देता है।

५ लोकसेवक नम्रताकी पराकाष्ठा कर दे—'शून्य' बनकर रहे। वह दूसरे वेतनभोगी सेवको अथवा दूसरे व्यवसायोके उपरात सेवाका काम करनेवाले लोगोंसे अपनेको श्रेष्ठ न माने और उनसे बडा दर्जा पानेका प्रयत्न न करे।

६ लोकसेवकको अपनी किसी स्वार्थमय, जैसे यश, अधिकार इत्यादि-की—महेच्छाकी पूर्तिके लिए जन-सेवाके कार्यमें नही पडना चाहिए, बल्कि धर्मकी भाषामे कहे तो लोकसेवा द्वारा ईश्वरोपासना होगी इस श्रद्धासे, अथवा व्यवहारकी परिभाषामे कहें तो अपने देश-बन्धुओको कुछ अधिक सुखके मार्ग-मे बढानेमें निमित्त बननेकी इच्छासे पडना चाहिए।

७ अत जनताका सेवक अपनी मधुरता और नम्रतासे जनता और अपने साथियोका मन हरण कर ले, अपने कार्य-प्रदेशमे जो कुछ सफलता मिले उसका यश अपने साथियोको दे एव खुद की हुई सेवाके बलसे ही उनका प्रेमपात्र बने।

८ नि स्वार्थ, नम्र, सच्चा और चारित्र्यवान लोकसेवक लोकप्रिय न हो गया हो ऐसा नही देखा गया है। उलटा यह अनुभव है कि जिसपर विश्वास जम गया हो वह लोक-सेवक अपने कार्य-प्रदेशमे लगभग सर्वाधिकारी बन जाता है और जनता उसकी बात मुहसे निकली नही कि मान लेती है। वह किसीकी अप्रीति या ईर्ष्याका पात्र नही होता, न किसीको कष्ट देनेवाला मालूम होता है।

९ जनता या दूसरे साथी अथवा नेता या स्वयसेवक-मडलसे बाहरके कार्यकर्त्ता कृतघ्न हैं अथवा कार्यमे विघ्नरूप हैं—जिस सेवकको बार-बार ऐसा प्रतीत होता हो खुद उसमे ही कोई भारी दोष है यह बात वह पक्की माने, क्योकि ऐसा अनुभव है, कि जनता साधारणत कृतज्ञ ही नही बल्कि बड़ी उदारतासे लोकसेवककी कद्र करनेवाली होती है।

१० जनसेवकमे नीचे-लिखे गुण होने चाहिए—

(अ) वह धार्मिक वृत्तिवाला होना चाहिए। अर्थात् उसे सत्याग्रह, सत्कर्म, सद्वाणी और सद्वर्त्तनमें पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए। इसके लिए उसमें लगन, भूल होनेकी अवस्थामे पश्चात्ताप और इसीमें अपना और जनताका श्रेय है यह दृढ श्रद्धा होनी चाहिए।

(आ) उसका चरित्र इतना विशुद्ध होना चाहिए कि स्त्रिया उसके पास

निर्भय होकर जा सकें और लोगोंको उसे स्त्रियोंके पास जाने देनेमें संकोच न मालूम हो।

(इ) उसका आर्थिक व्यवहार सर्वथा शुद्ध होना चाहिए। कितने ही लोग बड़ी रकमोंमें तो ईमानदार होते हैं, पर 'दमड़ी-छदामके चोर' होते हैं। कितने पाईका हिसाब तो सही-सही देते हैं और बड़ी रकमोंमें गोलमाल करने-वाले होते हैं। लोकसेवकको इन दोनों आक्षेपोंसे परे होना चाहिए और अपनी मार्फत आई हुई पाई-पाईका उसे ठीक-ठीक हिसाब रखना चाहिए।

(ई) उसे सतत उद्योगी होना चाहिए। जो गप-शप, फालतू बातों, निंदा-स्तुतिमें अपना समय बिताता है वह सेवक कभी प्रतिष्ठा नहीं पा सकता। उसकी उद्योग-शीलता ऐसी होनी चाहिए कि लोगोंपर उसकी छाप बैठ सके।

(उ) समय-पालनकी आदत उसे अवश्य होनी चाहिए। जिस कार्यके लिए जो समय तय किया हो उसमें चूक न होनी चाहिए।

(ऊ) इसका अर्थ यह हुआ कि उसे सदैव नियमोंका ठीक तौरसे पालन करते रहना चाहिए। सुबहसे राततककी उसकी क्रिया घड़ीकी सुईकी भांति यथाक्रम चलती होनी चाहिए।

(ए) इसके सिवा अपनी संस्थाके सिद्धांतों और नियमोंका पालन उसे लगनके साथ करना और अपने प्रधानकी आज्ञाका ठीक-ठीक पालन करनेवाला होना चाहिए। जो आज्ञा-पालन करना नहीं जानता वह आज्ञा-पालन करानेकी योग्यता कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

(ऐ) लोकसेवकको अपने देह-गेहकी चिंता ईश्वरको सौंपकर निर्भयता प्राप्त करनी चाहिए। लोक-सेवाके लिए अपने धन, प्राण, कुटुम्ब, सुख-सुविधा, स्वतन्त्रता इत्यादिका त्याग करनेकी पहली जिम्मेदारी उसे अपने सिर ले लेनी चाहिए। और जब जरूरत आ पड़े तब जोखिम उठाकर भी जनताके कार्यमें पड़ना चाहिए।

(ओ) लोकसेवकको खुद तो बहुत ही साफ-सुथरा रहना चाहिए, फिर

भी अस्वच्छ लोगोसे मिलने-जुलने और अस्वच्छता हटानेके काम करने में उसे घिन नही लगनी चाहिए ।

(औ) उसे अपना रोजनामचा (डायरी) लिखनेकी आदत रखनी चाहिए और उसमे अपने दैनिक कर्मोका यथावत् उल्लेख करना चाहिए ।

(अ) ईश्वर-स्मरणसे दिनका आरम्भ करके, रातको सारे दिनके कार्यका सिंहावलोकन तथा उसपर मनन करके और ईश्वर-स्मरणपूर्वक नीदकी गोदमें जानेवाला लोक-सेवक लोक-सेवा करते-करते श्रेयको ही प्राप्त होगा ।

(अ) ऐसा सेवक विचार करके इस नतीजेपर पहुचेगा कि उसे ब्रह्मचर्य धारण करके रहना चाहिए, और जबसे उसे इस बातका निश्चय हो जाय तबसे उसे इस दिशामे प्रयत्नशील होजाना चाहिए ।

२
ग्रामसेवकके कर्त्तव्य

१ ग्रामसेवकका पहला धर्म ग्राम-निवासियोको सफाईकी शिक्षा देना है । इस शिक्षणमे व्याख्यान और पत्रिकाओकी बहुत कम आवश्कता है—अर्थात् यह पदार्थ-पाठके द्वारा ही दी जा सकती है । ऐसा करते हुए भी धीरजकी आवश्यकता तो रहेगी ही । ग्राम-सेवकके दो दिन सेवा करनेसे लोग अपने-आप काम करने लग जायगे, यह नही मान लेना चाहिए ।

२ ग्रामसेवक ग्रामवासियोको एकत्र करके पहले उन्हें उनका धर्म समझाये । फिर गावसे ही कुदाली, फावडा, टोकरी या डोल और झाड़ू—इतनी चीजे जुटा-कर सफाईका काम शुरू करदे ।

३ रास्तोकी जाच करके पहले मलको टोकरीमें फावडेसे इकट्ठा करले और उस जगहको धूलसे ढक दे । जहा पेशाब हो वहां भी फावड़ेसे ऊपर की गीली धूल उठाकर उसी टोकरीमे डाल ले और उसपर आस-पाससे साफ धूल लेकर बखेर दे ।

४ मैला किसानके लिए सोना है । उसे खेतमें डालनेसे उसकी बढ़िया खाद

बनती है और फसल बहुत अच्छी होती है। अत किसानको समझाकर यथासभव किसीके खेतमें मैलेको करीब ९ इच गहरा गाड दे, इससे अधिक गहरा नही गाडना चाहिए। मैला गाडकर गड्ढेको मिट्टीसे भर देना चाहिए।

५ मैलेकी व्यवस्थाके बाद कूडेकी व्यवस्था करनी चाहिए। कूडा दो तरहका होता है —(१) खादके लायक, जैसे गोबर, मूत्र, साग-तरकारीके छिलके, जूठन, आदि, (२) लकडी, पत्थर, टीन, चिथडे इत्यादि।

६ खादके योग्य कूडा अलहदा एकत्र करके मैलेकी तरह पर अलग गड्ढेमे गाडना चाहिए या घूरकी जगह डालना चाहिए।

७ दूसरा कूडा उन गड्ढोमें डालना चाहिए जिन्हे भरना हो और गड्ढा भर जानेपर मिट्टी बिछाकर गड्ढेको चौरस कर देना चाहिए। ऐसे कूडेमेंसे लकडीके छिलके, दातनके चीरे आदि धो और सुखाकर ईंधनके काममे ला सकते हैं।

८ घूरके पास सस्ते पाखाने बनानेका जिक्र पहले (आरोग्य-खडमें) किया जा चुका है। जहा ऐसी व्यवस्था हो वहा किसान जबतक इस प्रकार इकट्ठे हुए मलको हिस्सेके मुताबिक बाट लेना न सीख ले तबतक ग्रामसेवकको रास्ते-की तरह ही घूरको भी साफ करना चाहिए।

९ गावके रास्तोको पक्का और अच्छा बनानेके उपाय करना ग्रामसेवकका काम है। स्थानिक परिस्थितिके अनुसार ये उपाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। गावके बडे-बूढे कभी-कभी इसमें सलाह दे सकते है।

१० सफाईसे फरसत पानेके बाद ग्रामसेवकको आवश्यक औजार और साधन लेकर गावमे चलनेवाले चरखे, धनुष, ओटनी आदिकी जाचके लिए निकलना चाहिए। जहा दुरुस्तीकी जरूरत जान पडे वहा कर दे और करना सिखा दे। नवसिखियोके कामकी जाच करके उन्हे उचित सूचनाए दे। नये उम्मीदवारोको अलहदा समय देकर उन्हे शिक्षा दे। इसके लिए गावमे जिस वक्त साधारणत ये काम चलते हो उसी समय जाचके लिए निकलना चाहिए।

११ कताई, बुनाई या दूसरे धघोकी व्यवस्था ग्रामसेवकके द्वारा होती

हो तो उसके लिए समय निश्चित करके लोगोको उसी समय आनेकी आदत डलवानी चाहिए और उस बीच मालकी जाच करके उसमे जो सुधार आवश्यक हो वे सुझाने चाहिए ।

१२ ग्रामसेवक कम-से-कम दिनमें एक बार ऐसे समय जो ग्रामवासियोके अनुकूल हो उन्हे एकत्र करके सामूहिक प्रार्थना करे । वह लोगोकी समझमें आनेयोग्य भाषामे होनी चाहिए । ग्रामसेवकको सगीतका ठीक ज्ञान होना वाछनीय है । यदि उसे गाना न आता हो तो गावके अच्छा गा सकनेवालो से भजन, धुन वगैरा गवाये और दूसरोको उसमे शामिल करे । अधिकाश गावोंमें भजन-मडलिया होती है, उन्हे नये और अच्छे भजन सिखाकर प्रार्थनामे उनका उपयोग करना चाहिए ।

१३ प्रार्थनाके बाद लोगोको अखबारोसे उपयोगी बातें, अच्छे लेख, पुस्तकें धार्मिक ग्रथ या कथाए कह या पढकर सुनानी चाहिए ।

१४ ग्रामसेवक नीचे-लिखी सूचनाओको ध्यानमे रक्खे—

(अ) गावमे दलबदी हो तो वह खुद किसी दलमें न मिले, किंतु तटस्थ रहकर सबकी एक-सी सेवा करे और सबसे समान मित्राचार रक्खे तथा अपने प्रभावसे कुछ हो सकता हो तो उस दलबदीको मिटानेका प्रयत्न करे ।

(आ) साधारणत जहा मिठाइया वगैरा खिलाई जानेवाली हो ग्रामसेवक वहाका निमत्रण स्वीकार न करे । ग्रामवासी ग्रामसेवकोके प्रति अपनी ममता दिखानेके लिए भिन्न-भिन्न निमित्तोके बहाने उन्हे निमत्रण दिया करते है और ग्रामसेवक उनका मन न दुखनेके खयालसे उन्हे स्वीकार करने लगता है । पर इससे बहुतेरे ग्रामसेवक स्वाद-लोलुप हो जाते है और ऐसे घरो तथा अवसरोकी खोजमे रहते है और मिष्टान्नके न्यौते मागनेमें भी नही हिचकते । ग्रामसेवकको याद रखना चाहिए कि ऐसे खर्च खुशहाल समझे जानेवाले ग्रामवासी भी अपने सामर्थ्यके बाहर ही करते है और मेहमानका खर्च ग्रामवासियोपर इतना अधिक होता है कि मेहमानोको सादा खाना खिलानेका रिवाज डालना सिखाना जरूरी है । इस कारण ग्रामसेवकको चाहिए कि मिष्टान्नके निमत्रणोंको न स्वीकार

करे और कहीं करना ही पड़े तो साधारणत मिठाई खानेवाला होते हुए भी वहां उसे सादा भोजन ही स्वीकार करनेका आग्रह रखकर मिष्टान्नका त्याग करना चाहिए ।

(इ) ग्रामसेवकको अपने खाने-पीनेकी आदतें बहुत ही सादी रखनी चाहिए जिससे गरीब-से-गरीब घरको भी उसकी सुविधाके लिए दौड-धूप या खास तैयारी न करनी पड़े ।

(ई) ग्रामसेवकको सयमी और तप-व्रतमय जीवन बिताना चाहिए । पर जिसे ग्रामसेवा करनी हो उसे अपने व्रत देहातकी हालतका खयाल करके लेने चाहिए, अन्यथा व्रत भी स्वच्छदता बन जायगे और ग्रामवासियोके लिए परेशानी पैदा करनेवाले हो जायगे । उदाहरणार्थ, कोई ग्रामसेवक शक्कर छोड़े और दूधमे शहद मांगे, चाय छोड़े और कहवा या मसालेका काढ़ा चाहे तो ये व्रत पूर्वोक्त दोषोके पात्र हो जायगे ।

खण्ड १४ : : संस्थाएं

१

संस्थाकी सफलता

१ किसी भी संस्थाकी सफलता नीचे-लिखी शर्तोंपर अवलंबित रहती है—

(अ) संस्थाके उद्देश्यके प्रति अत्यंत वफादारी-भरी निष्ठा और उसकी सिद्धिके लिए उत्साह होना।

(आ) संस्थाके नियमोंका स्थूल पालन ही नहीं बल्कि उसके भावका पालन होना।

(इ) संस्थाके संचालक, सभ्य, सेवक आदि कार्यकर्त्ताओंमें भ्रातृभाव और ऐकमत्य होना।

२ इन तीनमेंसे एक शर्त भी न पाली जाती हो तो दूसरी अनुकूलताओंके रहते भी वह संस्था सप्राण नहीं बनती।

२

संस्थाका संचालक

१ संस्थाका संचालक ही संस्थाका प्राण कहा जा सकता है।

२ उद्देश्यके प्रति उसकी निष्ठा और उत्साह, उसका नियम-पालन, दूसरे सभ्योंके प्रति उसका व्यवहार, उसकी उद्योगशीलता—इन सबपर संस्थाकी सफलता बहुत-कुछ अवलंबित रहती है।

३ संचालकको अपने अधिकारका गर्व अथवा संस्थाके दूसरे सभ्योंके प्रति अनादर या अरुचि रहती हो तो वह संस्थाको धक्का पहुंचायेगी।

४ जैसे अच्छा सेनापति नियम-पालन करानेमें बहुत आग्रही और सख्त

होनेपर भी अपने सिपाहियोका प्रेम-सपादन करनेकी चिता और उनका अभिमान रखता है वैसे ही सस्थाके सचालकको भी होना चाहिए ।

५. सचालककी निगाह सस्थाकी छोटी-से-छोटी बातोपर भी रहनी चाहिए। उस सस्थामें रहनेवाले मनुष्यो तथा प्राणियोके सुख-दु खकी वैसी ही चिता रखनी चाहिए जैसे माता बच्चेकी रखती है।

६ सचालक मौका आनेपर अपने अधिकारका उपयोग करे, फिर भी अपने मनमे अपने मातहत लोगोके साथ समानता अथवा साथीपनका ही सबध माने, और छोटे-से-छोटे आदमीको भी अपना मित्र ही समझे । वह यह माने कि मेरा सचालकपन मेरी विशेष योग्यताके कारण नही है बल्कि मेरे प्रति मेरे साथियोके पक्षपात या आदरके कारण ही है ।

७ इससे वह छोटे-से-छोटे व्यक्तिकी सूचनाको भी आदरपूर्वक सुनेगा और उचित होनेपर उसे स्वीकार करनेको तैयार रहेगा, तथा अनुचित लगनेपर उसका अनौचित्य समझानेका प्रयत्न करेगा ।

८ सचालकको कानका कच्चा न होना चाहिए । वह किसीके विषयमें जल्दी प्रतिकूल मत न बनाये, बल्कि प्रतिकूल राय कायम करनेमे दीर्घ-सूत्रता दिखाये और स्पष्ट प्रमाणके बिना वैसी राय न बनाये ।

९ सचालक अपने अधीन काम करने वालोमेसे किसीपर विशेष प्रेम न दिखाये, किसीके साथ पक्षपात न करे और एकको हीन ठहरानेके लिए दूसरेका बखान न करे ।

१० नियमोका ठीक-ठीक पालन करानेके लिए व्यवहार या वाणीमे कठोरता लाने या सजा देनेकी जरूरत नही । ऐसी जरूरत समझनेवाले सचालक अपनेमें योग्यताकी कमी होनेका सबूत देते है ।

३

सस्थाके सभ्य

१. जिस सस्थाके सभ्योमे परस्पर भ्रातृभाव और आदर नही है वह

सस्था अधिक समयतक तेजस्वी नही रह सकती । उसमें शाखाएं और दल-बंदिया हो जायगी, और उसके सदस्य सस्थाके मूल उद्देश्यको भूलकर एक-दूसरेके साथ लडने-झगडनेमें ही लग जायगे ।

२ जिस सस्थाके सभ्य अपनेसे ऊपरवालोकी आज्ञाका पालन करनेके लिए सहर्ष तत्पर न रहते हो वह अधिक समयतक तेजस्वी नहीं रह सकती । उसमें आलस्य और ढीलापन आजायगा, और सभ्य प्रमादमे पड जायगे ।

३ सचालक और सभ्योमें केवल स्थूल ही नही बल्कि मानसिक सहयोग भी होना चाहिए । अर्थात् सभ्योके लिए सचालककी इच्छा या आज्ञाके अधीन होना ही काफी नही है, बल्कि उस इच्छा या आज्ञाका औचित्य वे मानते हो तो इस तरह व्यवहार करना चाहिए मानो खुद ही उन्होने अपने मनमे वह काम करनेका निश्चय किया हो ।

४ जिस नियम या आज्ञाके औचित्यके विषयमे सभ्योको इतमीनान न हो उसके बारेमे उन्हे सचालकके साथ स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए और जबतक समाधान न हो जाय तबतक सचालकके मनमें ऐसा भाव न उत्पन्न होने देना चाहिए कि समाधान होगया ।

५. ऐसा नियम या आज्ञा अगर सत्य या धमके विपरीत न मालूम होती हो किंतु व्यवहारिक दृष्टिसे ही अनुचित लगती हो तो उसके औचित्यके बारेमे समाधान न होने पर भी उसका पालन करना चाहिए और यदि वह सत्य और धर्मके विरुद्ध मालूम हो तो सस्था छोडनेतकके लिए तैयार रहना चाहिए ।

६ वह नियम या आज्ञा सत्य या धर्मके विरुद्ध न हो पर अपनी कम-जोरीके कारण उसका पालन कठिन जान पडता हो तो सस्थाकी भलाईके लिए सभ्यका उसे छोड़ देना ही इष्ट माना जायगा ।

७ सभ्योमें परस्पर मतभेद हो जायें, किसीके आचरणके विषयमें शका हो या उससे अपनेको असतोष हुआ या दु ख पहुचा हो, किसीकी नियतके बारेमें अपने मनमें बदगुमानी हुई हो, तो वैसे हरएक मामलेमें सबसे पहले उस

आदमीसे ही बातचीत करके सफाई कर लेनी चाहिए। अगर इससे सफाई न हो और उसके बारेमें हमारी राय कायम रहे या अधिक दृढ हो जाय तो उसकी सूचना उसके या अपने तात्कालिक अफसरको दे देनी चाहिए और मुनासिब कार्रवाई करनेका भार उसे सौंप देना चाहिए।

८ उस व्यक्तिके साथ स्पष्टीकरण करनेका प्रयत्न किए बिना उसके सबंध में ऊपरके अधिकारी या किसी दूसरेसे जिक्र करना, अथवा अधिकारीको जताये बिना सर्वोच्च अधिकारीतक बात पहुचा देना अनुचित है।

९ अपने मनमे किसीके बारेमे इस प्रकार कोई बुराई आ गयी हो तो तुरन्त उसकी सफाई करानेके बदले उसे मनमें रखे रहना, और ऊपरके अधिकारीको जतानेकी आवश्यकता उपस्थित होनेपर भी उसे न जताना सस्थामे गदगी इकट्ठी होने देना है।

१० जिस सस्थामे सभ्योके दोषोकी अदर-ही-अदर कानाफूसी चलती रहती हो फिर भी अफसरोतक उसकी बात न पहुचती हो और जिसके सबधमे बाते होती हो उसके साथ स्पष्टीकरण भी न किया जाता हो वह सस्था तेजस्वी नही रह सकती। उसमें पाप, दभ, असत्य और जूठी लज्जा प्रवेश करके उसको निष्प्राण बना डालेगे।

४

सस्थाका आर्थिक व्यवहार

१ धनके अभावमे कोई सच्चा काम अटक जानेकी बात हमें नही मालूम।

२ पूंजी इकट्ठी करके उसके व्याजसे खर्च चलानेकी प्रवृत्ति इष्ट नही है। सस्थाके सचालकोमें यह दृढ श्रद्धा होनी चाहिए कि जिस सस्थाका जनताके लिए उपयोग है उसके निर्वाहके लिए पैसा मिलकर ही रहेगा।

३ यह सही है कि जबतक उस सस्थाकी उपयोगिताके विषयमें लोगोको विश्वास न हो जाय तबतक सचालको को अधिक मेहनत करनी पडेगी, पर

वह मेहनत उनकी तपश्चर्या और सेवा का ही भाग मानी जानी चाहिए ।

४ इसके बाद तो इतनी मदद मिलती रहती है कि अनेक सस्थाओकी निष्प्राणताका कारण उनके पास होनेवाला अर्थसचय ही हो जाता है । इस कारण आदर्श सस्थाको धन एकत्र कर रखनेके फेरमे नही पडना चाहिए ।

५ आमतौरसे देखा जाता है कि सार्वजनिक पैसेसे चलनेवाली सस्थाओमें कमखर्चीकी ओर काफी ध्यान नही दिया जाता । यह बडा दोष है । हिदुस्तान-जैसे गरीब देशकी सेवा करनेवाली सस्थाओको बहुत ही किफायतसे चलना चाहिए ।

६ सस्थाका हिसाब-किताब ठीक और साफ रखनेपर आमतौरसे ध्यान देना चाहिए । पाई-पाईका हिसाब महाजनी-पद्धतिसे रखना चाहिए और प्रमाणभूत हिसाब-परीक्षकोसे उसकी जाच कराते रहना चाहिए ।

वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० ३२१ (गांधी) मशरू

लेखक मशरूवाला, किशोरलाल

शीर्षक गांधी विचार दोहन

खण्ड ______ क्रम संख्या ५३२४